प्रकाशक—

लाला गुलजारीलाल जन
महावीर रस्टोरण्ट
दरीबा कलां,
दिल्ली।

प्रति	१०००
मूल्य	१ रुपया
वीर सं० २४९१	सन् १९६५

मुद्रक–
नवलक्ष्मी
दरीबा क
देहली

आद्य निवेदन

यह दिल्लीवासियों का सौभाग्य है कि परम पूज्य आचार्यरत्न १०८ श्री देशभूषणजी महाराज का चातुर्मास इस वर्ष दिल्ली में हुआ। इस चातुर्मास सहित अब तक महाराज के दिल्ली में पाँच चातुर्मास हो चुके हैं। इन चातुर्मासों के फलस्वरूप दिल्ली के जैन नर-नारियों में धर्म के प्रति गहरी आस्था जगी है। इस बात को मैंने निकट से देखने का जानने का प्रयत्न किया है और मैंने पाया है कि दिल्ली नगर के व्यस्तता भरे जीवन में भौतिक मूल्यों में दबी पिसी जिन्दगी में भी दिल्ली के व्यस्त जन जब मुनियों और त्यागियों के आहार-दान की स्पर्धा करते हैं, शास्त्र-प्रवचन में भारी संख्या में एकत्रित होते हैं और देव-दर्शन पूजन स्वाध्याय आदि में उत्साहपूर्वक समय लगाते हैं तो यह उस मनोवृत्ति को बताता है जिसमें धर्म के प्रति गहरी आस्था समाई हुई है। मुनिजनों के समागम की यह बड़ी भारी उपलब्धि है। यदि यह समागम न मिले तो क्या यह धर्ममय वातावरण फिर मिल सकेगा? निश्चय ही त्याग का ही यह प्रभाव है। जैन संतों और त्यागियों के चमत्कारी व्यक्तित्व का यह प्रभाव है कि नास्तिक जन भी उनके चरणों में आकर अपने अन्तर की वृत्तियों पर गहराई से विचार करता है और आत्म शोध द्वारा धर्म की उच्च मान्यताओं और आध्यात्मिक जीवन की श्रेष्ठता को सरल भाव से स्वीकार करता है।

आचार्य देशभूषण जी क्रियाशील आचार्य हैं। जैन आचार्य का जीवन विविधतापूर्ण होता है। उसे चतुर्विध संघ—मुनि आर्यिका-श्रावक श्राविका—धर्म और धर्मायतनों की रक्षा के अपने दायित्व को पूरा करना होता है। देशभूषण जी महाराज अपने इस दायित्व को पूरा करने में

बहुत नाराज रहते हैं। उनकी सजगता का यह प्रमाण है कि वे गत वर्ष जयपुर से पावापुर की यात्रा के निमित्त जाने वाले थे। किन्तु उन्हें पता लगा कि तीर्थराज सम्मेद शिखर जी के विषय में बिहार सरकार और श्वेताम्बर समाज के मध्य ऐसा करार हुआ है जिससे दिगम्बर समाज के अधिकार समाप्त हो गये हैं और सम्मेद शिखर जी पर दिगम्बर जैन श्वेताम्बरों की अनुकम्पा पर दर्शना तक के लिए निर्भर बना दिए गये हैं। यह बात दिगम्बर जैनों के धार्मिक अधिकारों और स्वाभिमान के विरुद्ध थी। तब आचार्य देशभूषण जी ने उस समझौते के विरुद्ध आवाज उठाई, जनता में जागृति की और घोषणा कर दी कि यदि यह समझौता रद्द नहीं किया गया तो मुझे आत्म शुद्धि के लिए ११ जुलाई से अनशन करना पड़ेगा। इस निश्चय की घोषणा होते ही जैन जनता में जागृति की लहर दौड़ गई। आचार्य महाराज अनशन के निमित्त देहली से विहार करते हुए दिल्ली पहुँचे। उनके साथ अनशन करने की भावना से अनेक त्यागी जन दिल्ली पहुचने लगे। और दिल्ली दिगम्बर जैन समाज की हलचलों का केन्द्र बन गया। किन्तु सरकारी क्षेत्रों के अनुरोध और आश्वासनों के कारण महाराज को अनशन स्थगित करना पड़ा और फिर युद्ध के कारण वह मामला अभी तक सुलझ नहीं पाया। अस्तु! तात्पर्य यह है कि आचार्य देशभूषण जी अपने आचार्य पद के दायित्वों को पूरा करने में सदा सचेष्ट रहते हैं।

आचार्य महाराज सरस्वती माता के अनन्य साधक हैं। वे अपना समय का उपयोग साहित्य-सृजन अध्ययन चिंतन में ही करते रहते हैं। वे प्रतिवर्ष चातुर्मास काल में ४-५ नई रचनायें देकर जैन साहित्य की श्रीवृद्धि करते रहते हैं।

उनकी प्रतिभा विलक्षण और व्यापक है। उनकी सूझबूझ गहरी है वे समय के पारखी हैं, उनकी लेखनी में धार है और उनकी वक्तृत्व शक्ति असाधारण है। वे प्रतिदिन प्रवचन करते हैं। किन्तु श्रोताओं को प्रति

न्ति नई सामग्री मिलती है। वह आचार्य महाराज के प्रवचन सुनकर भी उतना नहीं। यही महाराज के प्रवचनों की विशेषता है।

उनके प्रवचनों के छः संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। ये प्रवचन संग्रह भी मौलिक रचनाओं से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इस वर्ष के प्रवचनों का तो कोई संग्रह प्रकट नहीं हो पाया किन्तु पर्यूषण पर्व में महाराज के जो मार्मिक और गंभीर प्रवचन हुए उन्हें सुनकर मन में आया कि ये प्रवचन यदि प्रकाशित हो सकें तो जनता को उनसे लाभ उठाने का अवसर मिल सकेगा। फिर प्रवचन सुनने से सीमित व्यक्तियों ने और उन्हें पुस्तकाकार प्रकट करने पर असंख्य लोगों को लाभ मिल सकता है। इसी उद्देश्य से पर्यूषण पर्व के इन दिनों के प्रवचनों का संग्रह करके यह प्रकाशन हो रहा है।

लाला गुलजारीलालजी की धर्मपत्नी श्री इन्द्रवती ने पूर्णिमा के उद्यापन के उपलक्ष में इस पुस्तक के प्रकाशन का व्यय दिया है। तथा कागज लाला हरिश्चन्द्रसिंह जी ने दिया है। वे लाला जी आचार्य महाराज के अनन्य भक्त हैं बड़े धर्म प्रेमी उदार सज्जन हैं और त्यागियों की सेवा वैयावृत्य में लगे रहते हैं। इनके इस उदारतापूर्ण सहयोग के लिए मैं उनका आभारी हूँ।

फाल्गुन पूर्णिमा वीर संवत् २४८१ बलभद्र जैन

विषय सूची



दस लक्षण धर्म

उत्तम क्षमा धर्म

क्षमा वीरस्य भूषणम्

क्षमा ही वीर पुरुषों के लिए भूषण है और यह क्षमा अमर पद को देने वाला है। जब तक क्षमा रूपी सामग्री प्राणी को नहीं मिलता है तब तक इस जीव को अमरता का रास्ता नहीं मिलता है। अमर होने के लिए साधन भी अमर होना चाहिए। तभी अमरता प्राप्त हो सकती है। असतो मा सद्गमय असत्य से सत्य में आओ। सत्य अमरता दिलाने वाला है। अमरता की प्राप्ति के लिए जो दस लक्षण धर्म बताये गये हैं सबसे पहले शान्ति की जरूरत है। पृथ्वी को हम चाहे कितना भी मारें कूटें थूकें या मल मूत्र करें पर वह सभी सहन कर लेता है। इसी तरह विवेकी पुरुष को भी चाहे कितने बाह्य तरफ से दुःख आयें वह उन पर क्रोध नहीं करता है। सब पर क्षमा रखता है सहिष्णुता सिखाता है। पाप या हिंसा तो नश्वर है। एक न एक दिन नष्ट हो जाने वाला है। लेकिन जब इन भावों को सामने वाले के हृदय पर भी प्रतिक्रिया होती है तो उस पर भी हिंसा का प्रभाव पड़ने लगता है। जैसे एक मानव के हृदय में किसी के प्रति द्वेष भावना आई और सामने वाले पुरुष की भी वैसी भावना हुई तो ऐसी हालत में वह कुछ समय तक टिक जाता है अन्यथा नष्ट हो गई होती। अतः सामने का बल मिलने पर ही वह टिक सकती है। हम अनुभव से भी इस सच्चाई को देखते हैं। किसी क्रोध करने वाले आदमी के सामने केवल क्षमा धारण कर लें तो उसका क्रोध नष्ट हो जाता है। जब क्रोध के सामने क्रोध

और गुस्से के सामने गुस्से का बल हो जाता है तो वह कुछ समय के लिए टिर जाता है। परन्तु इसके अंत का एक ही उपाय है शान्ति। उदाहरणार्थ—

एक बार बलदेव सात्यकि, कृष्ण और दारुक जंगल में घूमने गये थे। घूमते घूमते वे बहुत दूर निकल गये और वहीं पर उनको रात हो गई। वापस घर आने का मौका नहीं था क्योंकि घोर जंगल था। सब ने सोचा कि आज की रात इसी जंगल में किसी पेड़ के नीचे बिताई जाय। हम में से बारी बारी से एक आदमी जागता रहे। और शेष सब सोते रहें। यह तय करके वे एक पेड़ के नीचे आ बैठे। सबसे पहले दारुक जगा और पहरा देने लगा। जब दारुक को छोड़ कर तीनों सो गये तो इतने में एक पिशाच उसके सामने आया और बोला—भाई! मुझे बहुत जोर की भूख लगी है। अतः मुझे इन तीनों आदमियों को खाने दो। दारुक ने कहा—ये कैसे हो सकता है। मैं इनकी रक्षा के लिए खड़ा हुआ हूँ। अतः मेरे देखते हुए किसी को नहीं खा सकता है। अगर तू खाना ही चाहता है तो पहले मुझे परास्त कर और फिर इनको खा। इस पर पिशाच लड़ने के लिए तैयार हो गया। पिशाच और दारुक दोनों आपस में भिड़ गये और दोनों की गुत्थमगुत्था होने लगी। जैसे जैसे दारुक का रोष बढ़ता जाता था उसी प्रकार पिशाच का बल भी बढ़ता गया। दारुक पिशाच को परास्त न कर सका और उसका समय पूरा हो गया। अब सात्यकि की बारी थी। वह उठा और बाद में थका हुआ दारुक चुपचाप सो गया। कुछ देर के बाद पिशाच फिर आया उसने सात्यकि से भी वही बात कही। सात्यकि ने कहा कि मेरे रहते हुए तू उनको खा नहीं सकता है पहले मुझे हरा। और फिर इन सबको खा। सात्यकि भी पिशाच से लड़ा और पिशाच को परास्त नहीं कर सका। यह भी दारुक की तरह लोहू-लोहान हो गया। इसके बाद बलदेव की बारी आई तो वह भी थक करके सो गया। बलदेव भी पिशाच से लड़ा परन्तु उसकी स्थिति भी दारुक और सात्यकि की तरह हो गई

और वह थककर चकनाचूर हो गया पर पिशाच को परास्त नहीं कर सका। अब अन्त में कृष्ण की बारी थी। जब वे पहरा देने के लिए उठे तो पिशाच ने उनसे भी वही बात कही दोनों का युद्ध शुरू हुआ कृष्ण शान्त खड़े हो गये। पिशाच का जैसे जैसे बल बढ़ता गया वैसे वैसे कृष्ण शान्ति से उसे कहते रहे—पिशाच ! शाबाश तू बड़ा बीर है। तेरी माता धन्य है जिसने तुझ जैसा वीर पुत्र पैदा किया। इस तरह से ज्यों ज्यों कृष्ण शान्त रहते गये वैसे वैसे उस पिशाच का बल भी क्षीण होता गया। और वह इतना निर्बल हो गया कि कृष्ण ने उसे पकड़ कर अपनी जेब में रख लिया।

इसलिए भव्य प्राणियो ! ये एक रूपक है। क्रोध ही पिशाच है और शान्ति है। जब तक इसे सामने से बल मिलता है तब तक यह टिकता है जब उसे सामने से बल नहीं मिलता है तो वह निर्बल हो जाता है कृष्ण के सामने वह पिशाच हार मान जाता है। सवेरे सब उठे तो तीनों के शरीर लाल लाल हो रहे थे। जब कृष्ण ने उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि हम रात में एक पिशाच से लड़े थे और उसी का यह परिणाम है कि हमारा शरीर खून से लाल हो रहा है। तब कृष्ण ने सबसे कहा कि पिशाच भयंकर नहीं होता है। यदि उसे बल न दें तो वह अत्यन्त निर्बल हो जाता है जिसके फलस्वरूप यदि हम जैसे-जैसे उस पर रोष करेंगे वह वैसे वैसे ही भयंकर होता जायगा। तुमने उस पर रोष किया था इसलिए तुम तो उसे अपने वश में नहीं कर सके। मैंने उस पर जरा भी रोष नहीं किया और वह मेरे सामने इतना निर्बल हो गया कि उसे मैंने अपनी जेब में रख लिया और वह मेरा दास बन गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि क्रोधी के सामने कभी क्रोध नहीं करना चाहिए वह क्षमा से ही वश में आ सकता है। बिना क्षमा किये वह वश में नहीं आ सकता। धूल उड़ती हो तो धूल से धूल को नहीं दबाया

जा सकता। उस पर पानी ही डालना चाहिए। वह पानी से दबाई जाती है। इसी तरह अगर हम क्रोध पर क्षमा का पानी नहीं डालेंगे तो वह कभी भी नहीं दबेगा। अतः क्षमा समरसता प्राप्त करने का पहला धर्म है इसको अपने जीवन में अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। क्रोध चार प्रकार का है—अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी माया अनन्तानुबन्धी मान और अनन्तानुबन्धी लोभ। अप्रत्याख्यान क्रोध अप्रत्याख्यान मान अप्रत्याख्यान माया अप्रत्याख्यान लोभ। प्रत्याख्यान क्रोध प्रत्याख्यान मान प्रत्याख्यान माया, प्रत्याख्यान लोभ। संज्वलन क्रोध संज्वलन मान संज्वलन माया संज्वलन लोभ। इस प्रकार कषाय की भिन्न भिन्न प्रकृतियाँ अनेक है। इस कर्म की प्रकृति के अनुसार तीव्र मन्द उदय के निमित्त से जीव की आयु बंध जाती है। इस तरह तीव्र मन्द कषाय के अनुसार जैसा भी आयु बन्ध किया हो उसी प्रकार नीच उच्च या पशु नारकी देव बिच्छू सर्प आदि गतियों में जन्म लेता है। उनके जन्म का मुख्य निमित्त कारण एक क्रोध रूपी पिशाच है। इस क्रोध ने इस आत्मा को हमेशा अनेक निन्द्य गतियों में भ्रमण कराया है। इसलिए विवेकी मानव के लिए क्रोध रूपी पिशाच को जीतने के लिए अक्रोध साधन है दूसरा और कोई साधन नहीं है। क्रोध को नष्ट करने के लिए केवल मानव के लिए क्षमा धर्म का पाठ वीतराग देव ने पढ़ाया है। जब तक यह पाठ ठीक तरह से याद न करें, वह हमारे हृदय में न उतरे तब तक इस पिशाच के बल को हम दूर नहीं कर सकते हैं।

क्रोध से हानि—

क्रोधाद् दुर्योधनो नष्टः क्रोधान्नष्टो हि रावणः ।
शिशुपालस्तथा क्रोधाद् विनष्टो मधुकैटभः ॥

अर्थात् क्रोध के कारण दुर्योधन का विनाश हो गया। क्रोध से रावण नष्ट हो गया। क्रोध से ही शिशुपाल और मधुकैटभ का सर्वनाश हो गया।

सर्वं जयति अमोघ

संसार में सम्पूर्ण विश्व को जीत लेने की शक्ति है। क्षमा से क्रोध तथा शत्रु को अपने वश करने में क्षमा सर्वोत्तम साधन है अर्थात् क्षमा अमोघ है। प्रत्येक मानव को क्षमा का अभ्यास हमेशा करते रहना चाहिए। क्षमा का एक उदाहरण इस प्रकार है

अध्यापक ने एक दिन अपने सभी विद्यार्थियों को बुला करके पाठ दिया कि तुम आज क्षमा का पाठ याद करो। दूसरे दिन सभी विद्यार्थी क्षमा का पाठ याद करके अध्यापक के पास आ गए। सब ने पाठ सुना दिया परन्तु युधिष्ठिर ने पाठ नहीं सुनाया। उनसे पूछा कि तुमने पाठ याद क्यों नहीं किया तो उसने कहा कि मुझे पाठ याद नहीं हुआ। तब दूसरे दिन याद करने को कहा। ऐसे बार पांच दिन बीत गये फिर भी उसने पाठ नहीं सुनाया। ऐसा करने पर गुरु ने युधिष्ठिर को क्रोध में मारपीट की। जितने जितने गुरु ने बेंत मारा उतने उतने अपने मन में क्षमा भावना रही उसने किसी प्रकार का मन में क्रोध नहीं आया। अन्त में हुई आंख से आंसू नहीं आया। बाद में गुरु थक करके चुप हो गए तब युधिष्ठिर ने कहा — गुरु जी! पाठ याद हो गया। क्षमा गुरु यह पाठ मुझे याद हो गया तब गुरु ने उनको छोड़ा। तब गुरु ने पूछा — क्षमा तक पाठ नहीं हुआ परन्तु आज पाठ याद हो गया। तब युधिष्ठिर ने कहा कि मेरे अन्दर क्षमा का पाठ उतरा नहीं था और सहन करने की शक्ति नहीं थी आज इतने होने पर भी मैं सब सहन कर आत्मा के अन्दर सहन करने की शक्ति पाई तभी मुझे क्षमा का पाठ याद हो गया। और देह से मेरी आत्मा भिन्न है इसलिए पर वस्तु को छोड़ कर मैं आत्मा में लीन रहा और इसलिए मुझे कोई मार नहीं लगी। मैंने अपनी आत्मा को शरीर से मार की तरफ से हटा दिया था। इस प्रकार मानव को इस सद्मार्ग पथ में य

हो पाठ याद करना पड़ेगा कि मेरा स्वभाव ही अक्रोध स्वभाव है। आज यह पाठ सम्पूर्ण मानव के सामने रखा गया है। जब तक मानव प्राणी इस पाठ को ठीक प्रकार से मनन नहीं करता है तब तक इस मानव को अमरता का मार्ग नहीं मिल सकता है अर्थात् मोक्ष मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

दस धर्म को पालने से असंयम से संयम में और मृत्यु से अमरता में पदार्पण किया जा सकता है। इनमें सबसे पहला धर्म क्षमा है। कहा भी है कि—क्षान्तिश्चेत् कवचेन किम्—यदि मानव के पास क्षमा का शस्त्र हो तो उसे कवच की कोई आवश्यकता नहीं है। क्षमा स्वयं अंगरक्षक का काम करता है। इसके प्रतिपक्षी क्रोध का उल्लेख करते हुए कवि कहता है कि—क्रोधश्चेत् अनलेन किम् अर्थात् यदि क्रोध है तो अनल अर्थात् अग्नि का कोई प्रयोजन नहीं है। जिस प्रकार अग्नि सम्पूर्ण पदार्थों को भस्मीभूत कर देती है, उसी प्रकार क्रोध के द्वारा आत्मा की बहुमूल्य सम्पत्ति तत्काल नष्ट हो जाती है।

क्रोध साक्षात् हिंसा का स्वरूप है। क्रोध के आश्रय में अहिंसात्मक प्रवृत्तियों का न आचरण होता न संवर्द्धन होता है तथा उनका संरक्षण भी नहीं हो सकता। क्रोध सबसे पहले मनुष्य के विवेक पर टूट पड़ता है उसे विवेकभ्रष्ट बनाता है। इससे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है उसका बलेन्स अर्थात् माइंड मानसिक सन्तुलन कायम नहीं रहता। उस स्थिति में वह पवित्र अहिंसात्मक प्रवृत्तियों का परिपालन करने में असमर्थ हो जाता है। वह क्रोधी हिंसात्मक प्रवृत्तियों में बड़ी सरलता से संलग्न हो जाता है। गम्भीरता से विचार किया जाय तो आत्मा के उत्कर्ष के लिए विनाशक शक्तियों में क्रोध का विशेष स्थान है। दस धर्मों में यदि क्षमा का प्रथम स्थान है तो अधर्मों में क्रोध का भी पहला नम्बर है। जिस तरह मनुष्य सर्प से सिंह से व्याघ्र अथवा राक्षस से डरता है उससे

को भयंकर डर भय और पवित्र पुरुषों को क्रोधी से सदा बचता है। क्रोधी व्यक्ति मानसिक सन्तुलन खोकर न वाणी पर संयम रखता है न उसका इन्द्रियों पर संयम रहता है और मन उसके काबू में बिल्कुल रहता ही नहीं है। गम्भीरता से विचार कर देखा जाय तो क्रोध की स्थिति में मनुष्य एक दीवाना बन जाता है। उसे तो एक पागल के रूप में देखना चाहिए। पागल आदमी के हाथ में अगर हथियार हो तो वह न मालूम क्या करे। इसी प्रकार क्रोधी भी कर्तव्य अकर्तव्य धर्म अधर्म सदाचार आदि सारी सीमाओं का अतिक्रमण कर स्वच्छन्द पशु की भाँति प्रवृत्ति करने लगता है। न वह बुजुर्गों का सम्मान करता है न माता पिता की आज्ञा मानता है वह गुरु के वचनों की भी कोई कीमत नहीं करता। वास्तव में क्रोध आँखें खुली रहते हुए भी जीव के हिये की आँखें बन्द कर उसको एक अद्भुत अन्धे का रूप प्रदान करता है। इस तरह क्रोधी न केवल अन्धा बनता है वह पागल भी रहता है। समझदार आदमी का कर्तव्य है कि जिस तरह भयंकर जानवर से अपनी रक्षा करता है परन्तु दूर रहता है इसी तरह से उसे क्रुद्ध व्यक्ति के समीप आने पर क्षमा के द्वारा संयम से मानसिक सन्तुलन को नहीं खोना चाहिए। आखिर पागल के आने पर दूसरा आदमी पागल नहीं बनता। किसी ने मूर्खता की है तो उसका जवाब मूर्खता के माध्यम से नहीं दिया जाना चाहिए। महात्मा ने क्रोध को जीतने के लिए अक्रोध भाव अथवा क्षमा का पवित्र मार्ग बतलाया है। इस क्षमा के द्वारा स्वयं को बिल्कुल क्षति नहीं पहुँचती और क्षमा की शीतल समीर लगने पर क्रुद्ध व्यक्ति का मस्तिष्क उत्तेजनाशून्य बन कर शान्त बन जाता है। क्षमा एक ऐसी औषधि है जो सबको शान्ति देती है। और क्रोध एक ऐसी बीमारी है जो स्वयं को और आसपास में बैठने उठने वालों को सब प्रकार का कष्ट पहुँचाती है। ऐसे अनेक विचार हैं जिनके माध्यम से विवेकी मनुष्य क्रोध की खराबी का विचार करते हुए क्षमा माता की शरण ग्रहण करने को उद्यत हो सकता है।

आजकल दुनियाँ में इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। क्षमा आत्मा में समता द्वारा लोक में और परलोक में सुख देने वाली है। हमें इसका क्षमा धर्म का हृदय से पालन करना चाहिए।

इस प्रसंग में एक महत्व की बात हमें नहीं भूलनी चाहिए। कुछ लोग दुर्जनों, अत्याचारों अथवा चमत्कारों को छिपाने के लिए क्षमा शब्द का उपयोग करते हैं। यद्यपि उनके हृदय में विरोधी के प्रति भयंकर क्रोध की अग्नि जलती है उनके हृदय का भाव शत्रु के प्रति बिना बुझे की अग्नि की तरह रहता है। इसलिए जैन आचार्यों का ऐसे उस व्यक्ति को वास्तव में क्षमा वाला नहीं माना है। इस प्रकार के विरुद्ध गृहस्थ जीवन को ध्यान में रखते हुए कुछ मर्यादायें हैं। गृहस्थ साधन सम्पन्न है और उसके समक्ष देव गुरु और शास्त्र पर आक्रमण हो रहा है, कुल की मर्यादा संकट में पड़ रही है, न्याय को पददलित करते हुए अत्याचारी आततायी आगे बढ़कर सत्पुरुषों और अहिंसात्मक प्रवृत्तियों को विनष्ट करने को तैयार हैं ऐसी स्थिति में समर्थ व्यक्ति यह कहने लगे कि मैंने क्षमा भाव धारण कर लिया है तो यह क्षमा शब्द का दुरुपयोग है। उस समय श्रावक का कर्तव्य होगा कि वह अपनी पूर्ण शक्ति लगा कर अन्याय का अस्त्र शस्त्र आदि का सहारा लेकर भी प्रतिकार करे। यह अन्तःकरण में दया धारण करने वाला श्रावक सर्व प्रथम इस बात का ध्यान रखेगा कि उसे कठोर पथ अवलम्बन का प्रयत्न न करना पड़े किन्तु जब वह मार्ग अवरुद्ध हो जावे तो उस अंगुली को टेढ़ा कर घी निकालने का तरीका स्वीकार करना होगा। नीतिवाक्यामृत में आचार्य सोमदेव ने कहा है कि—क्षमा भूषणं यतीनाम् न तु भूपतीनाम्—यह क्षमा सर्व परिग्रह त्याग करने वाले दिगम्बर मुनियों का भूषण है लेकिन क्षात्र तेज सम्पन्न क्षत्रिय के लिए उस प्रकार नहीं है। उस योग्य देश काल परिस्थिति को देखकर दुष्टों को दण्डित करना होगा उनका निग्रह करना होगा तथा सज्जनों का

[illegible] और धर्म [illegible] का इस उचित उपाय [illegible] करता होगा। इन बातों में [illegible] स्वयं का प्रयास किया है [illegible] तक विश्व मात्र में दृष्ट है। यह निरपराध निरीह [illegible] के विरुद्ध कठोर [illegible] का [illegible] किन परिस्थितियों में [illegible] और मानवता की रक्षा के लिए यह अपना तलवार है जब कभी [illegible] और [illegible] करने पर जग (समाज) का [illegible]। [illegible] का [illegible] करने के लिए [illegible] का बड़ा [illegible] है [illegible] कहा है कि दण्डमाया [illegible] [illegible] में आम जनता [illegible] नहीं जाता है। वर्तमान समय में जो हत्याकार भ्रष्टाचार और पापाचार बढ़ रहा है। इसका कारण [illegible] की शिथिलता है और यह [illegible] का [illegible] अथवा [illegible] दृष्टि [illegible] है [illegible] का [illegible] का रास्ता छोड़कर त्याग का [illegible] और [illegible] के लिए [illegible] है और इस बात के लिए [illegible] का [illegible] होने पर वह [illegible] के लिए भी नहीं [illegible]। कहने का तात्पर्य यह है कि साधु प्राणी मात्र पर क्षमा भाव धारण करते हैं किन्तु [illegible] का [illegible] दुष्ट का सामना [illegible] है। [illegible] और [illegible] के [illegible] है। [illegible] का [illegible] का अन्त [illegible] आदि [illegible] का [illegible] नहीं करता है [illegible] पूर्ण और [illegible] है यह [illegible] नहीं है। [illegible] में [illegible] का [illegible] नहीं [illegible] और [illegible] का अनुशासन स्वीकार करता है वह गृहस्थ [illegible] आदि प्राणियों पर क्षमा भाव रखेगा और यह भावना करता कि [illegible] में [illegible] स्थिति [illegible] कि वह [illegible] मुक्ति [illegible] को प्राप्त कर मन वचन काय और [illegible] तथा अपना [illegible] द्वारा किया

को व्यथ यष्ट तथा तकलीफ न द बल्कि उनके जीवन के माध्यम से सम्पूण प्राणियो का अभय आनन्द और शान्ति तथा सन्ताप प्राप्त हो। इस विवेचन से कोई यह न समझे कि क्रोध को मित्र तथा अच्छी चीज है। वह तो शत्रु ही है उसका विनाश करना जीवन का एक मात्र लक्ष्य होना चाहिए क्योंकि क्रोध का विनाश कर बिना धम का कर्म यक्ष नहीं बन पाता। क्षमा शब्द पृथ्वी का वाचक है। भार के लिए जमीन चाहिए भवन निर्माण के लिए जमीन चाहिए। इसी प्रकार रत्नत्रय के दिव्य प्रासाद के लिए क्षमा रूपी जमीन चाहिए। उस परिशुद्ध और पवित्र भूमि पर अवस्थित आत्म गुणो का उत्तुंग प्रासाद अप्रतिम सौन्दर्य से सम्पन्न होता हुआ अविनाशी आनन्द और शक्ति का प्रदाता बनता है। जिन आत्माओ ने आत्मा का विकास किया है उन्होंने क्रोध का परित्याग कर भगवती क्षमा की प्राणपण से आराधना की है। यह क्षमा सम्पूर्ण सिद्धियो की जननी है इसलिए जो व्यक्ति अपनी आत्मा को सच्ची शान्ति देना चाहते है उनको अपने हृदय मे क्षमा को स्थान देना चाहिए। कुछ लोग मांस मछली अण्डा खाते हुए, शिकार खेलते हुए और जीवो का वध करते हुए भी वाणी के द्वारा क्षमा की बहुत सुन्दर एक्टिंग करते हैं, अहिंसा और अभय का अभिनय दिखाते है। यह चीज ठीक नहीं है। जीवन मे करुणामयी प्रवत्तियों के आधारात्मक प्रवश के बिना सही अथ मे क्षमा का प्रवेश नही होता। दिखावा क्षमा का नाक दिखावा कर सकता है असली क्षमा का आनन्द लेन क लिए भाव की प्रवत्तियाँ मद्य मास आदि स रहित हो करुणामयी होनी चाहिए। इस क्षमा का साक्षात् सरस्वती भी पूणतया वणन नहीं कर सकता है तो उसका क्या अधिक व्याख्यान किया जावे। सक्षेप म हमारा ये ही कहना है कि क्रोध पिशाच से पिण्ड छुडा कर क्षमा का पथ पकडो। उससे जीवन सुखी शान्त और समृद्ध बनेगा।

उत्तम मार्दव धर्म

मार्दव का अर्थ मृदुता है। मृदुता के माने कोमलता अर्थात् कठोरता न हो। कठोरता अभिमान के कारण आती है। अभिमानी मनुष्य का मन अपने अहं में इतना कठोर हो जाता है कि वह अपने समक्ष किसी को कुछ गिनता नहीं। दूसरों को तुच्छ गिनता है और अपने को हर मामले में बड़ा। ऐसे व्यक्ति का स्वभाव बन जाता है—मैं मैं करने का। मैं ऐसा हूँ मैं वैसा हूं। किन्तु जो मनुष्य मैं मैं करता है ऐसा अभिमानी व्यक्ति कभी जीवन में सफलता नहीं पाता। मैं मैं करने वाला बकरा कसाई के हाथों मृत्यु प्राप्त करता है किन्तु मैना पक्षी मैं ना मैं ना करने के कारण लोगों का प्रेम और आदर पाता है। रावण बड़ा अभिमानी था। उसे उसकी पटरानी मन्दोदरी ने समझाया—नाथ! परस्त्री का अपहरण करके आपने अच्छा काम नहीं किया। आप सीता को उसके पति राम के पास लौटा दीजिए और राम से संधि कर लीजिए। यह सुनकर रावण मन्दोदरी पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला—तू मुझे राम का भय दिखाती है। कहाँ त्रिखण्डाधिपति मैं और कहाँ वन वन घूमने वाला राम। तू मुझे ही उपदेश देती है। उसके भाई विभीषण ने उसे समझाया तो अभिमान में चूर हुए रावण ने उसे अपने राज्य से ही निकाल दिया। किन्तु इसका क्या परिणाम निकला? रावण लक्ष्मण के हाथों मारा गया। सीता देना पड़ी राज्य गया और संसार में वह अपयश का भागी हुआ।

अभिमान विनय गुण का विघातक है। विनय के बिना मनुष्य में धर्म की पात्रता नहीं आती। जब तक हृदय में कोमलता नहीं बल्कि कठोरता है विनय नहीं अहंकार है विनम्रता नहीं उद्धतता है तब तक न तो उसे गुरु कुछ सिखा सकते हैं और न सीखा हुआ उसके चित्त

म ⁻ ⁻र रखना है। वास्तव मे धम का प्रारम्भ विनय स ोता है। सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक चारित्र की विनय और उपचार विनय इस प्रकार चार प्रकार की विनय है। इस विनय के कारण ही मनुष्य के मन मे देव शास्त्र-गुरु और धम के प्रति आदर के भाव पैदा हो जाते है। द्रोणाचार्य के पास कौरव और पाण्डव राजकुमार तत्व और शास्त्र की शिक्षा प्राप्त करते थे। अर्जुन गुरु की बड़ी विनय करता था। अत प्रसन्न होकर गुरु उन्हे विशेष रूप मे धनुर्विद्या सिखाते थे। दुर्योधन गुरु के प्रति उद्दण्ड रहता था। वह सोचता था कि गुरु जी अर्जुन के प्रति विशेष पक्षपात करते है मुझे उसके समान धनुर्विद्या क्यो नही सिखाते? जब यह शिकायत चार बार करने लगा तो एक दिन द्रोणाचार्य ने — दुर्योधन! विद्या विनय से आती है औदार्य स नही। तुझे अर्जुन की विद्या से ईर्ष्या है किन्तु अर्जुन के गुणो स—उसकी गुरुभक्ति और विनय से क्या ईर्ष्या नही करता। तुममे विनय नहीं था सकती और तुझे कभी धनुर्विद्या भी नही आ सकता।

वास्तव मे विनय सर्वोत्तम गुण है। विनयी सभी का प्रिय होता है। सभी उसे चाहते है। सभी उसकी प्रशंसा करते हैं। शास्त्रों मे कहा है —

विणउ सासण मूल, विणउ णिव्वाण साहगो।
विणउ विप्पमुक्कस्स काउ धम्मो काउ तवो ॥

विनय शासन का मूल है विनय निर्वाण देने वाला है। जिसमे विनय नहीं है उसका धम और तप व्यर्थ है।

विणउ णाण णाणा दसण,
दसणाउ चरण, चरणहुति मोक्खो।

अर्थात् विनय से ज्ञान ज्ञान स दर्शन दर्शन से चारित्र और चारित्र स मोक्ष प्राप्त होता है।

मन्दिरा पीकर नशा चढ़ता है, उस समय मन्दिरा पीने वाले को भान नहीं रहता और यद्वा तद्वा बाय कर बैठता है। इसी प्रकार जिसको अभिमान होता है वह भी एक नशे मे रहता है। उसे सत् असत् का कोई विवेक नही रहता। विवेक रह ता वह अभिमान कर ही क्यो। विवेक नही रहता इसलिए तो वह अभिमान करता है और जब विवेक नहीं रहता उस दिशा मे वह जो भी कार्य करेगा वह सब उसके आत्म हित के विरुद्ध ही होगा। उस समय वह आत्म-कल्याण की कोई बात सोच भी नहीं सकता है। अत मान का मद की संज्ञा दी है और उसके आठ भेद किये गये हैं—

ज्ञानमद पूजामद कुलमद जातिमद बलमद, ऋद्धिमद तपमद शरीरमद।

ज्ञान मद

अल्पज्ञानी मनुष्य अपने तुच्छ ज्ञान पर अभिमान करता है। वह अपने आपको महा ज्ञानी मानता है और दूसरो को तुच्छ और अल्पज्ञ समझता है।

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्ध समभवम्,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्त मम मन ।
यदा किंचित्किंचिद् बुधजनसकाशादवगतम्,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगत ॥

अर्थात् जब मुझको थोडा सा ज्ञान हुआ तब मैं हाथी की तरह मद मे अंधा हो गया और यह समझने लगा कि ज्ञान मे मुझसे कोई अधिक नहीं है। परन्तु जब विद्वानो की संगति मे मुझको कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त हुआ तब मुझको ज्ञान हो गया कि मैं मूर्ख हूँ और मेरा मद ज्वर के समान उतर गया।

वास्तव में ज्ञान का सागर अगाध है। इसमें डुबकी लगाकर कोई एक लोटा भर लाता है कोई एक घड़ा भर लाता है। फिर इतने ज्ञान जल को धारण करके इतराना कि मेरे पास जितना ज्ञान जल है उतना संसार में किसी के पास नहीं यह निरी अज्ञानता है। ज्ञान पर जो मद किया जाता है वह ज्ञान का अपराध नहीं। यह तो मद करने वाले का दोष है। भर्तृहरि ने इसका कितना सुन्दर मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। वे कहते हैं—

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं,
केषांचिदेतन्मदमान - कारणम् ।
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये,
कामातुराणामतिकाम-कारणम् ॥

अर्थात् सत्पुरुषों को तो ज्ञान मान मर्यादि का नाश करने वाला है और दूसरों को वही ज्ञान मद और मान का बढ़ाने वाला है। जैसे एकान्त स्थान योगियों को तो मुक्ति के लिए है किन्तु कामातुरों को अत्यन्त काम उत्पन्न करने वाला है।

[illegible] ने कहा है—

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलव दुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥

अर्थात् मूर्ख को आसानी से समझाया जा सकता है। विद्वान को उससे भी अधिक आसानी से समझाया जा सकता है। किन्तु थोड़े से ज्ञान के मद में फूले हुए व्यक्ति को ब्रह्मा भी प्रसन्न करने में समर्थ नहीं है।

संसार में [illegible] हैं। अपनी मान्यताओं को लेकर वादविवाद चल रहे हैं। [illegible] को लेकर शास्त्रार्थ होते हैं। धर्मों के नाम

इन नाना प्रकार की मान्यतायें और सिद्धान्त संसार में प्रवर्तित हो रहे हैं। यह सब मानमद के जीते जागते नमूने हैं। मान मद के कारण ही भगवान महावीर के समय में भी स्वयं महावीर को तीर्थंकर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी मानने वाले विद्वानों ने स्वतन्त्र मत और सिद्धान्त निकाले थे। और महावीर की स्पर्धा में अपने विषय में नाना प्रकार के चमत्कारों का प्रचार किया था। भगवान ऋषभदेव के काल में स्वयं उनके पौत्र और चक्रवर्ती भरत के पुत्र मरीचि ने मिथ्या सिद्धान्त गढ़कर प्रचारित किये थे। इसका कारण उनका यही ज्ञान मद था। जब मनुष्य में यह अहंकार भर जाता है कि मैं सबसे बड़ा विद्वान् हूँ दूसरे सब मूर्ख हैं। तो वह अनेक प्रकार की गर्व मान्यतायें दूसरों पर थोपने का प्रयत्न करता है। ज्ञान मद तो वस्तुतः बौद्धिक पागलपन है। मनोविज्ञान के विद्वान् कहते हैं कि यदि कोई मूर्ख पागल हो जाय तो वह अधिक से अधिक दूसरों को शारीरिक कष्ट देगा या आत्म हत्या कर लेगा। किन्तु यदि ज्ञान मद से कोई विद्वान् या बुद्धिमान् पागल हो जाय तो वह अपने सीमित-संकुचित ज्ञान से ही अनेक व्यक्तियों को मार्ग भ्रष्ट करके उनको अपार क्षति पहुंचाता है। यह क्षति ऐसा होता है जिससे उनकी आत्मा मिथ्यात्वी हो जाता है वे मिथ्या मान्यताओं और मिथ्या विश्वासों के चक्र में फंस जाते हैं और फिर वहाँ से उनके लिये बाहर निकलना कठिन हो जाता है।

इसीलिये कहा है—

मान रे मानव मान बुरो,
मतिमान गुमान न मान न नीको।
मान किये अपमान लहै,
न विमान लहै घर देवपुरी को॥

व्यक्ति को अभिमान तो नहीं करना चाहिए किन्तु स्वाभिमान कभी नहीं छोड़ना चाहिए। स्वाभिमान के जाने पर व्यक्ति में दीनता आ जाती है। दीनता आने पर व्यक्ति के गुण प्रभावहीन हो जाते हैं और मनुष्य याचक बन जाता है। उसमें उसकी आत्मा कुंठित हो जाती है। दूसरे के प्रभाव में आकर धर्म मार्ग को भी छोड़ देता है और दूसरे के अवगुण और कुगुण को गुण समझकर स्वीकार कर लेता है। यह स्वाभिमान ही है जिसमें व्यक्ति अनुचित काम नहीं करता अनुचित प्रभाव को स्वीकार नहीं करता अनुचित बात को नहीं मानता। कुल मिलाकर वह अनुचित से समझौता नहीं करता और उचित में गुरेज नहीं करता। अतः स्वाभिमान करना उतना ही आवश्यक है जितना आवश्यक अभिमान का त्याग करना है। क्योंकि स्वाभिमान आत्मा के उत्तम गुणों का स्वीकार है जबकि अभिमान स्व को भूलकर पर को अपना मानकर किया जाता है।

अतः किसी व्यक्ति को ज्ञान का मद कभी नहीं करना चाहिए। यदि कभी मन में अपने ज्ञान के सम्बन्ध में अहंकार की भावना आवे तो व्यक्ति को सोचना चाहिए—इस अनादि काल से अज्ञान और कुज्ञान के कारण तू संसार में भ्रमण कर रहा है। तुझे कभी सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। यदि सम्यग्ज्ञान प्राप्त हो गया होता तो तुझे ज्ञान पर अभिमान न आता। तुझे अपने तुच्छ ज्ञान पर अभिमान है इसी से ज्ञात होता है कि तुझे सम्यग्ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। फिर ज्ञान तो अनन्त है। संसार में जितने पदार्थ और उनकी पर्याय हैं वे सब ज्ञान का विषय हैं, ज्ञेय हैं। पदार्थ और उनकी पर्यायों का अन्त नहीं। अतः ज्ञान का भी अन्त नहीं। यही विद्या की बात। यों संसार में विद्यायें अनेकों हैं। इन विद्याओं सम्बन्धी ग्रन्थ अनेकों हैं। संसार में भाषायें अनेकों हैं। उनमें अलग अलग विषयों की पुस्तकें अनेकों हैं। तू सोच तुझे कितनी भाषायें आती और कितने विषय आते हैं। उन विषयों के भी क्या सारे ग्रन्थ तूने देखे हैं।

जब थोड़ी भी भाषाओं और विषयों का भी तू पूरे तौर पर नहीं जानता तो संसार में इतने विषय हैं इतनी भाषायें हैं कि यदि तू अपना जीवन उन्हें जानने में लगा दे फिर भी तू उन सबका जानकार हो गया यह दावा तू नहीं कर सकता फिर तुझसे अधिक विद्या के स्वामी तो संसार में करोड़ लोग हैं। तूने अपने को सबसे बड़ा विद्वान् कैसे मान लिया।

पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित कुछ लोगों में एक और फैशन चल रहा है। वे आधुनिक वैज्ञानिकों को सब कुछ मानते और उनके मुकाबिले सर्वज्ञ भगवान और उनकी वाणी जैनागमों को तुच्छ समझते हैं। वे मद से आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों को लेकर उसकी प्रशंसा करते हैं और जिनवाणी का सम्यक्ज्ञान आधुनिक विज्ञान से पिछड़ी और अल्पज्ञान वाली कहते हैं। वे भूल जाते हैं कि जिनवाणी सर्वज्ञ की वाणी है। वह त्रिकाल में भी असत्य नहीं हो सकती। जिनवाणी तो निर्भ्रान्त है, जबकि विज्ञान के आधुनिक परिणाम न तो अन्तिम हैं और न निर्भ्रान्त ही हैं। फिर भी आधुनिकतावादी जो आक्षेप करते हैं वह भी एक प्रकार का ज्ञान-मद ही है। अतः हम सबको सब प्रकार के ज्ञान-मद से बचना चाहिए, तभी हमें सम्यग्ज्ञान के दर्शन हो सकते हैं।

पूजा-मद

जगत् में किसी पुण्य के उदय से जब लोगों में किसी की मान्यता, आदर और सम्मान बढ़ जाता है तब वह अकारण ही अपने आपको सबसे बड़ा और ऊंचा मानने लगता है। उसमें अहंकार आ जाता है जिससे अपने सामने दूसरों को तुच्छ, नगण्य और हीन मानने लगता है। वह इस अहंकार के वशीभूत होकर ऐसे व्यवहार करने लगता है जिससे दूसरों का तिरस्कार होता हो। इसकी प्रतिक्रिया दूसरों के मन में होने लगती है और वह उस व्यक्ति के सम्बन्ध में आदर की बजाय घृणापूर्ण धारणा बना लेता है। इसी प्रकार और लोगों की धारणा भी बदलने

लगती है। लोग उस घमण्डी बढ़कर तिरस्कार करने लगते हैं उसकी उपेक्षा करने लगते हैं। और उन्नति पूजा के शिखर पर विराजमान उस व्यक्ति का लोगों की दृष्टि में पतन हो जाता है। तब लोग कहने लगते हैं—देखा ना घमण्डी का सिर सदा नीचा होता है।

दूसरों से पूजा पाकर, आदर और श्रद्धा पाकर इतराना क्या ? वह तो पूर्व जन्म के पुण्य का फल है। जब तक उस पुण्य का उदय है वह पूजा मिलती। जब पुण्य क्षीण हो जाता है तो दूसरों से आदर भी नहीं मिलता। वह सबकी निगाह में गिर जाता है। यदि उस पुण्य को सुरक्षित रखना है और बढ़ाना है तो अपने आपको अत्यन्त विनम्र बनाना चाहिए। अभिमान करने से वह पुण्य क्षीण हो जाता है।

कुल-मद

मनुष्य उच्च या नीच कुल में जन्म लेता है वह अपने पूर्वकृत कर्मों के अनुसार लेता है। इसमें किसी व्यक्ति के वर्तमान पुरुषार्थ का कोई प्रकार नहीं आता। यदि पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार प्राप्त कुल उच्च हुआ तो उस पर अभिमान करने से उसकी उच्चता की सारी महत्ता समाप्त हो जाती है। उच्च कुल प्राप्त हुआ तो उसका लाभ तो यह था कि सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके जिनेन्द्र भक्ति में अपना उपयोग लगाया जाय। जब कुल का मद मन में आवे तो सोचना चाहिए कि मैंने अनादि काल से निम्न कुलों में अनन्त बार जन्म लिया है। कभी तिर्यंच बना कभी निगोद की योनि में गया कभी नरक के दुःख भोगे। किन्तु उस समय कुल का मद कहाँ गया था जब निम्न कुल में जन्म लिया था और सब मेरी निन्दा करते थे। अब मुझे पुण्य योग से उत्तम कुल मिला है तो मुझे उसका मद करना क्या उचित है।

जाति-मद

इसी प्रकार यदि पुण्य योग से उत्तम जाति मिल गई तो उसका भी अभिमान करना उचित नहीं कहा जा सकता। मुझे अनन्त बार

एकेन्द्रिय से लेकर क्रमशः पंचेन्द्रिय या पर्याप्तपर्यन्त मनुष्य अनन्त नीच जाति मिली। अब कुछ पुण्य के योग से मनुष्य जाति में उत्तम का अवसर आया है। तब उस जाति का ही अभिमान करके उससे लाभ उठाने का अवसर गवा देना बड़ी मूर्खता है। उत्तम जाति प्राप्त करके उत्तम कार्य करना चाहिए। नीच कर्म किया तो उत्तम जाति प्राप्त करने का क्या लाभ रहा? नीच कर्म तो नीच जाति प्राप्त करके भी किया जा सकता था। जात्यभिमान अहंकार एक प्रकार का नीच कर्म ही है। अतः उत्तम जाति का गौरव विनम्रता धारण करने में है, न कि उसका अहंकार करने में।

बल-मद

पुण्योदय से यदि शरीर में बल प्राप्त हो जाता है तो उस बल के कारण व्यक्ति को अहंकार हो जाता है। वह अपने आपको संसार में सबसे अधिक बलवान समझता है और दूसरों को निर्बल समझकर हीन दृष्टि से देखता है। किन्तु संसार में बल की कोई सीमा नहीं है। व्यक्ति को यह सोचना चाहिए कि संसार में एक से एक अधिक बलवान-बड़े बड़े बली उत्पन्न हुए लेकिन उनका आज नामो निशान बाकी नहीं रहा। संसार के सभी व्यक्तियों में अर्द्ध चक्री नारायण बलवान होता है और वह अपने बल के द्वारा भरत क्षेत्र के तीनों खण्डों पर विजय प्राप्त करता है। उनसे भी अधिक बलवान चक्रवर्ती होता है। वह छहों खण्ड पर विजय प्राप्त करता है। उनसे अधिक बलवान इन्द्र होता है और अनंत इन्द्रों के बराबर तीर्थङ्करों में बल होता है किन्तु संसार में न अर्द्ध चक्री रहे और न चक्रवर्ती। अनंत इन्द्र हुए और वे भी चले गये। इसलिए कहा है कि—

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खंड सारा
कहाँ गये वह राम रु लछमण, जिन रावण मारा।

कहाँ कृष्ण रुक्मिणि, सतभामा, अरु सपति सगरी ।
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी ।
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में ।
गये राज तज पांडव वन को अग्नि लगी तन में ।

जिस समय बाहुबलि स्वामी को एक मायारूप विकल्प के कारण केवलज्ञान प्राप्त नहीं हो रहा था और वह विकल्प यह था कि मैं जिस भूमि पर खड़ा हुआ हूँ वह भरत की भूमि है। यह बात चक्रवर्ती भरत को मालूम हुई। वे बाहुबलि मुनिराज के निकट आये और विनम्रतापूर्वक चरणों में नमस्कार करके बोले—भगवन् ! यह भूमि भरत की नहीं है। यहाँ मुझ जैसे अनेक चक्रवर्ती हो चुके हैं लेकिन आज उनका नाम रूप भी नहीं है। जब मैंने षट्खण्ड विजय करके वृषभाचल पर्वत पर अपने हृदय-रत्न से विजयी सम्राटों में अपना नाम लिखना चाहा तो मैंने यह देखा कि वहाँ पर नाम लिखने लायक कोई स्थान नहीं है। तब मेरे मन में यह विचार जागृत हुआ कि इस पृथ्वी को विजय करने वाला सर्वप्रथम मैं ही नहीं हूँ बल्कि मुझसे पहले अनेकों चक्रवर्ती हो चुके हैं। उनमें से भी बहुतों ने नाम लिखने का प्रयत्न किया तो उन्होंने अन्य किसी चक्रवर्ती का नाम मिटा कर अपना नाम लिखा। मैंने भी एक चक्रवर्ती का नाम मिटाकर अपना नाम लिखा। अनेक भरत आये और चले गये लेकिन पृथ्वी जहाँ की तहाँ अचल है।

वास्तव में व्यक्ति इस विशाल संसार में एक बूँद के समान है। वह अपनी महत्ता के कारण महान् नहीं है बल्कि वह महान् अपने गुणों के कारण ही बन सकता है। उनमें सबसे बड़ा बाधक है अहंकार। इसलिए व्यक्ति को अपने बल पर कभी अभिमान नहीं करना चाहिए।

ऋद्धि-मद

ऋद्धियाँ किसी मुनि को महान् तपस्या करने के बाद ही प्राप्त होती हैं। किन्तु तपस्या के द्वारा प्राप्त ऋद्धियों पर भी मुनि

अभिमान करता है उसकी तुच्छता की सीमा नहीं है। तपस्या यह पुण्य का फल है और कर्म की निर्जरा का कारण है। संसार में आज तक जितने हुए हैं और होंगे वे सब तपस्या के कारण ही मोक्ष को प्राप्त कर सके हैं। किन्तु व्यक्ति तप का उपयोग कर्म की निर्जरा में न करके ऋद्धि प्राप्त करने में करते हैं। वे रत्न देकर कांच खरीदते हैं। जिसके द्वारा तीनों लोक की समस्त आत्मिक सम्पदा प्राप्त हो सकती है उससे वे केवल साधारण ऋद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और उसे प्राप्त करके फिर उनको अहंकार हो जाता है। ऐसे भी महान् तपस्वी होते हैं जिन्हें तपस्या के फल स्वरूप सहज ही ऋद्धि प्राप्त हो जाती है और उन्हें उन ऋद्धियों का भान तक नहीं होता। क्योंकि ऋद्धि की प्राप्ति उनका लक्ष्य नहीं है उनका लक्ष्य तो उससे भी महान् और उच्चतर है। मुनिराज विष्णुकुमार को जब अर्द्ध रात्रि में एक क्षुल्लक ने यह सूचना दी कि हस्तिनापुर में ७०० मुनियों का जीवित यज्ञ किया जा रहा है और उनकी रक्षा केवल आप ही कर सकते हैं तो विष्णुकुमार नहीं समझ सके कि मैं इतनी दूर कैसे पहुँच सकता हूँ। तब क्षुल्लक ने उन्हें स्मरण दिलाया कि उनको विक्रिया ऋद्धि की प्राप्ति हो चुकी है। विष्णुकुमार को इतने पर भी विश्वास नहीं हुआ और उन्   मुझे
हाथ बढ़ाकर देखा। वह
विक्रिया ऋद्धि सिद्ध

वास्तव में ऐसे
किन्तु संसार के कुछ
मान हो जाता है और
विनाश करते हैं। अतः
चाहिए।

इसी प्रकार अपनी
मद करना आरंभ हुआ

का कारण है। उसी तपस्या पर अहंकार करके कर्मों का बन्ध करना किसी प्रकार उपादेय नहीं हो सकता। अनेक तपस्वी तपस्या से शाप और अनुग्रह की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें तेजोलेश्या की सिद्धि हो जाती है। शास्त्रों में ऐसे कई उदाहरण आते हैं जबकि ऐसे तपस्वी ने क्रोध करके दूसरों का नाश किया और स्वयं भी नरक का पात्र बना। द्वैपायन मुनि ने उस बला में आकर द्वारका का दाह कर दिया। उनकी उस तेजोलेश्या से सारी द्वारका तो भस्म हो ही गई साथ ही वह भी उस अग्नि में भस्म हुए और उन्हें नरक में जाना पड़ा। अतः तप का उपयोग केवल आत्म कल्याण में करना चाहिए और उस पर किसी प्रकार का अभिमान नहीं करना चाहिए।

शरीर-मद

शरीर की सुन्दरता और कुरूपता शुभ या अशुभ नाम कर्म के उदय से प्राप्त होती है। शरीर की सारी रचना नामकर्म के ऊपर ही निर्भर है। उसी पूर्व पुण्य के योग से शरीर सुन्दर और बलवान बनता और अशुभ कर्म के उदय से शरीर अत्यन्त कुरूप मिलता है। उपार्जित कर्मों का परिवर्तन आज हमारे ऊपर नहीं है। किन्तु उन कर्मों से आज हम शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं और अपने आपको अशुभ प्रवृत्तियों से बचा सकते हैं। किन्तु पूर्व कर्मों के कारण जो रूपवान शरीर मिला है उस पर अभिमान करके हम शुभ कर्मों की महत्ता को समाप्त कर देते हैं। शरीर के बाह्य रूप पर ही हमारी दृष्टि रहती है। किन्तु यदि हम शरीर के स्वरूप पर विचार करें तो यह संसार के सबसे अधिक अत्यन्त घृणा उत्पादक अपवित्र वस्तुओं का भण्डार है। इसलिए किसी उर्दू शायर ने कहा है कि—

आदमी का जिस्म क्या है जिस पे शैदा है जहाँ
एक मिट्टी की इमारत एक मिट्टी का मकाँ

गारा इसमें खून है और ईंट इसमें हड्डियां
चन्द सांसों पर खड़ा है यह खयाली नूरो शां
जो न होती इसके ऊपर चाम की चादर मढ़ी
तब तो इसको काग कुत्ते नोचते हर हर घड़ी

खून हड्डी मलमूत्र आदि अपावन पदार्थ इस चमड़ी से ढका हुआ है। यदि चमड़ा बाहर निकाल दें तो हमें बहुत ग्लानि होती है और उन्हीं अपवित्र पदार्थों से बनी इस देह पर हम अभिमान करें यह कितनी बड़ी मूर्खता है। इसीलिए कहा है कि—

तू नित पोसे यह सूखे ज्यों, धोवे त्यों मैली।
निश दिन करें उपाय देह का, रोग दशा फैली।
मात पिता रज वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नस लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी।
काना पौंडा पड़ा हाथ यह चूसै तो रोवै।
फलै अनन्त जु धर्म ध्यान की, भूमि विषै बोवै।
केसर चन्दन पुष्प सुगंधित, वस्तु देख सारी।
देह परसते होय अपावन, निशदिन मल जारी।

शरीर तो इतना अपवित्र है यदि एक बार कपड़े को पहन लिया जाय तो उस कपड़े को दूसरा नहीं पहन सकता क्योंकि वह अपवित्र हो जाता है। यह शरीर तो वास्तव में नरक की खान है और उस नरक की इस खान पर अभिमान करना सबसे बड़ी मूर्खता है। एक कवि ने कहा है कि—

उदर में नरक, अधोद्वार में नरक,
कुचन में नरक, नरक भरी छाती है।

कंठ में नरक, गाल चिबुक नरक जिंच,
मुख में नरक जीभ लाल हू चबाती है।
नाक में नरक, आंख कान में नरक बहे,
हाथ पाव नख शिख नरक दिखाती है।
सुंदर कहत नारी नरक को कुण्ड यह,
नरक जाय पड़े, सो नरक पाती है।
कामनी को अङ्ग अति मलीन, महा अशुद्ध,
रोम रोम मलीन, मलीन सब द्वार है।
हाड मांस मज्जा मेद, चामसु लपेटी राखे,
ठौर ठौर रक्त के भरे ही भण्डार है।
मूत्र [illegible] पुरोष आंत एकमेक मिल रही,
और हूँ उदर माहीं, विविध विकार है।
सुंदर कहत नारी नखशिख निन्दा रूप,
ताही जो सराहे, सो तो बड़ा ही गवार है।

अत किसी प्रकार का अभिमान या मद करना अधम है। उसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।



उत्तम आर्जव धर्म

आत्मा का स्वभाव सरलता है। पर वस्तु के संयोग से आत्मा में विषमता आ जाती है। और मायाचार नियम [illegible] जाता है। [illegible] में रहते हैं सब [illegible]

करते रहते हैं। हम अपने प्रति और दूसरों के प्रति मायाचारी का व्यवहार करते हैं। किन्तु जैसे सर्प का स्वभाव टेढ़ा चलने का है परन्तु जब वह बिल में जाता है तो सीधा हो जाता है। हम इस संसार में भले ही मायाचार करके तिरछे चलते हैं किन्तु यदि हम सिद्धालय में पहुंचना है तो हमें सरल बनना ही पड़ेगा।

हम इन्द्रिय विषयों की लम्पटता के कारण दूसरों के प्रति मायाचारी करते हैं। हमारे मन में दूसरों को ठगने का भारी सन्तोष होता है किन्तु यदि विचार किया जाय ... हमारे ... नहीं
ठगते अपने आप को ही ठगने
मायाचारी की भावना पैदा होनी
है। हमारे मन में एक भ्रान्ति
समझते हैं कि हम जो कुछ
भी हम दूसरे को ठगने का
गुणों के घात के स्वयं कार्य
प्रतिक्रिया दूसरे के मन
मन में हमारे प्रति
साथ इसी प्रकार का
प्रभाव दूसरे के मन पर

एक नगर में
उसने
गिर गया
अपने हाथ
देखकर यह
क्रिया

कि व्यापारी को फाँसी दे देनी चाहिए। दूसरे दिन राजा फिर उसी रास्ते से निकला और दोनों मित्रों के मन में उसी प्रकार की भावना उत्पन्न हुई। राजमहल पहुँच कर राजा ने अपने मंत्री से पूछा कि चन्दन का व्यापारी मेरा अभिन्न मित्र है लेकिन उसे देखकर मेरे मन में यह भावना क्यों पैदा हो जाती है कि उसे फाँसी की सजा दे देनी चाहिए। मंत्री बुद्धिमान था उसने उस व्यापारी को बुलाया और उसे अभयदान का आश्वासन देकर एकान्त में पूछा कि तुम सच सच बताओ जब राजा तुम्हारी दुकान के सामने से निकले थे तो तुम्हारे मन में क्या भाव पैदा हुआ था। व्यापारी ने डरते डरते कहा कि मेरे पास चन्दन का बहुत बड़ा स्टाक है लेकिन इसका भाव गिर गया है और मुझे नुकसान हो रहा है। मेरे मन में यह विचार जरूर आया था कि यदि राजा मर जाये तो मेरा चन्दन अच्छे दामों में बिके। मन्त्री ने उसका सारा चन्दन खरीद कर मंगवा लिया। अगले दिन जब राजा व्यापारी की दुकान के सामने से निकला तो न व्यापारी के मन में राजा के मरने की भावना थी और न राजा के मन में व्यापारी को फाँसी देने का विचार था लेकिन दोनों के मन में पूर्ववत् मित्रता की भावना थी। वास्तव में उनके विचारों ने—परिणामों ने राजा पर प्रभाव डाला था।

क्रिया और प्रतिक्रिया सहज धर्म है। मनोविज्ञान इसका समर्थन करता है कि हमारे विचारों का प्रभाव दूसरों के मन पर पड़ता है और यदि उसका मनोबल हमसे प्रबल न हुआ तो उसके मन के दर्पण में हमारे विचारों की प्रतिच्छाया पड़ती है। जैसे हमारे विचार होते हैं वैसे ही दूसरों के विचार हो जाते हैं। इसलिए जब हम दूसरे को ठगने का प्रयत्न करते हैं तो दूसरे के मन में भी हमारे प्रति विपरीत भाव हो जाता है। जब हमारी मायाचारी का पता दूसरे को लग जाता है तो वह हमारे साथ व्यवहार करना भी छोड़ देता है। वह हमारे ऊपर विश्वास नहीं करता है और इस प्रकार हम उसकी निगाह से गिर जाते हैं। यदि हमारा मायाचार एक व्यक्ति के लिए हो तो हम एक

करते रहते है। हम अपने प्रति और दूसरो के प्रति मायाचारी का व्यवहार करते है। किन्तु जस सप का स्वभाव टेढ़ा चलने का है परन्तु जब वह बिल म आता है तो सीधा हो जाता है। हम इस ससार मे भले ही मायाचार करके तिरछे चलते हैं किन्तु यदि हमे सिद्धालय मे पहुचना है तो हमे सरल बनना ही पडेगा।

हम इन्द्रिय विषयो की लम्पटता के कारण दूसरो के प्रति मायाचारी करते हैं। हमारे मन म दूसरो को ठगने का भारम सन्तोष होता है किन्तु यदि विचार किया जाय तो हम परस्पर एक दूसर को नहीं ठगते अपने आप को ही ठगते हैं। जब हमारे मन मे दूसरो के प्रति मायाचारी की भावना पैदा होती है तो हमारे मन की शान्ति नष्ट हो जाती है। हमारे मन म एक अद्भुत कम्पन पदा होने लगता है। हम स्वय समझते हैं कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह उचित नही है किन्तु फिर भी हम दूसरे को ठगने का प्रयत्न करते हैं। और इस तरह आत्मिक गुणो के घात के स्वय कारण बनते है। हमारी इस भावना का प्रभाव प्रतिक्रिया दूसरे के मन मे भी होती है और जिसको हम ठगते ह वह अपने मन में हमारे प्रति दुर्भाव रखता है और अवसर मिलने पर वह भी हमारे साथ इसी प्रकार का व्यवहार करता है। हमारे मन की भावनाओ का प्रभाव दूसरे के मन पर अवश्य पड़ता है।

एक नगर म चन्दन का बहुत बडा व्यापारी रहता था। एक बार उसने चन्दन का भण्डार खरीद लिया किन्तु दुर्भाग्य से चन्दन का भाव गिर गया। उस नगर का राजा उसका मित्र था। एक दिन जब राजा अपने हाथी पर बठ उधर से निकला तो उस व्यापारी के मन मे उस देखकर यह भाव जाग्रत हुआ—यदि यह राजा मर जाय तो इसकी दाह क्रिया के लिए मैं अपना चदन अच्छे भावो मे बेच दू। इस पर जो मुझे हानि हो रही है इसके स्थान पर मुझे बहुत लाभ हो। उधर उस व्यापारी को देख कर राजा के मन मे भी अकस्मात् यह भाव पैदा हुआ

कि व्यापारी को फाँसी दे देनी चाहिए। दूसरे दिन राजा फिर उसी रास्ते से निकला और दोनों मित्रों के मन में उसी प्रकार की भावना उत्पन्न हुई। राजमहल पहुँच कर राजा ने अपने मंत्री से पूछा कि यह चन्दन का व्यापारी मेरा अभिन्न मित्र है लेकिन उसे देखकर मेरे मन में यह भावना क्यों पैदा हो जाती है कि उसे फाँसी की सज़ा दे देनी चाहिए। मंत्री बुद्धिमान था उसने उस व्यापारी को बुलाया और उसे अभयदान का आश्वासन देकर एकान्त में पूछा कि तुम सच सच बताओ जब राजा तुम्हारी दुकान के सामने से निकले थे तो तुम्हारे मन में क्या भाव पैदा हुआ था। व्यापारी ने डरते डरते कहा कि मेरे पास चन्दन का बहुत बड़ा स्टाक है लेकिन इसका भाव गिर गया है और मुझे नुकसान हो रहा है। मेरे मन में यह विचार ज़रूर आया था कि यदि राजा मर जायें तो मेरा चन्दन अच्छे दामों में बिके। मन्त्री ने उसका सारा चन्दन खरीद कर मँगवा लिया। अगले दिन जब राजा व्यापारी की दुकान के सामने से निकला तो न व्यापारी के मन में राजा के मरने की भावना थी और न राजा के मन में व्यापारी को फाँसी देने का विचार था लेकिन दोनों के मन में पूर्ववत् मित्रता की भावना थी। वास्तव में उसके विचारों ने—परिणामों ने राजा पर प्रभाव डाला था।

क्रिया और प्रतिक्रिया सहज धर्म है। मनोविज्ञान इसका समर्थन करता है कि हमारे विचारों का प्रभाव दूसरों के मन पर पड़ता है और यदि उसका मनोबल हमसे प्रबल न हुआ तो उसके मन के दर्पण में हमारे विचारों की प्रतिच्छाया पड़ती है। जैसे हमारे विचार होते हैं वैसे ही दूसरों के विचार हो जाते हैं। इसलिए जब हम दूसरे को ठगने का प्रयत्न करते हैं तो दूसरे के मन में भी हमारे प्रति विपरीत भाव हो जाता है। जब हमारी मायाचारी का पता दूसरे को लग जाता है तो वह हमारे साथ व्यवहार करना भी छोड़ देता है। वह हमारे ऊपर विश्वास नहीं करता है और इस प्रकार हम उसकी निगाह से गिर जाते हैं। यदि हमारा मायाचार एक व्यक्ति के लिए हो तो हम तब

प्रमाणित हो कि स्वस्थ रहा है। यदि अशुद्धि हो तो इस घृत की
वृद्धि के लिए काम है।

पहले लोग न्याय से व्यापार कर करते थे। कम लाभ लेते थे। वे सत्य का मुनाफा करते थे। भाव कम होता था किन्तु आज व्यापार में परिस्थितियों में भाव अत्याधिक न होते, न जानते अन्य कम अधिक न्याय और अन्याय का विचार न करके हम सबके निजी के लिये अधिक से अधिक लाभ कमाने का प्रयत्न करते हैं। इसी कारण आज बाजार में शुद्ध पदार्थ मिलना दुर्लभ हो गया है। प्रत्येक वस्तु में मिलावट चल रही है। आज बाजार में घी, तेल आदि खाद्य पदार्थों में अनेक प्रकार की मिलावट करते हैं। आज नैतिक स्तर इतना गिर चुका है कि व्यापारी मिलावट के नये नये तरीके निकालने के लिए अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हैं। उन्हें पाप का घबराहट और कुछ नजर नहीं आता। वे दूसरों के प्राणों के साथ खिलवाड़ करने से भी नहीं चूकते। आजकल दवाईयों में भी मिलावट हो रही है और दवाईयों में इस प्रकार के पदार्थ मिलाने का प्रयत्न करते हैं जिसका जनता के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। आए दिन इस प्रकार के केस सुनने में आते हैं कि दवाईयों का उन पर विपरीत ही असर हुआ। और वह अपनी जान से हाथ धो बैठा।

इसी प्रकार देश में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। रिश्वतखोरी सुरसा की तरह दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। सरकार नित्य नए कानून और आचार संहिताएं बना रही है किन्तु उसका देश के मानसिक धरातल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। आज हमारा नैतिक स्तर इतना गिर गया है कि हम दूसरों को रिश्वत देकर उनकी निन्दा करते हैं किन्तु स्वयं रिश्वत देते हुए संकोच नहीं करते और अवसर मिलने पर रिश्वत लेने में भी कोई विचार नहीं करते। यह कितनी लज्जा का विषय है जो भारत देश धर्मपरायण कहलाता था वह आज भौतिकवादी

पश्चिमी देशों में नतिकता में बहुत पिछड़ा हुआ है। स्थिति इतनी शोचनीय हो गई है कि विदेशों में हमारा जो माल जाता है उसमें भी लोग मिलावट करने में नहीं चूकते। नमूने कुछ दिखाते हैं और माल दूसरी तरह का भेजते हैं। इस तरह दूसरों की दृष्टि में भी भारत की प्रतिष्ठा को गिराने का प्रयत्न करते रहते हैं और उसमें कोई लज्जा का अनुभव नहीं करते।

जहाँ जिसको जैसा अवसर मिलता है, वह मायाचारी करने में चूकता नहीं। दर्जी कपड़ा बचा लेता है सुनार सोने चाँदी में खोट मिलाये बिना नहीं मानता। ठेकेदार सड़क और इमारतों में सामान के स्थान पर रेती लगाने का प्रयत्न करता है। इन्जीनियर रिश्वत लेकर उसे पास कर देता है न्याय के विधाता जजों और मजिस्ट्रेटों की नाक के नीचे पेशकार अहलमद नाजिर और चपरासी तक रिश्वत लेते रहते हैं। और कानून की पहरेदार पुलिस भ्रष्टाचार को दूर करने के प्रयत्न में स्वयं भ्रष्टाचारी बन गई है। जुआ सट्टा देश सबकी साल भर्मी हुई है। भाग गांजा अफीम चरस शराब कोकीन सभी नियम विरुद्ध पदार्थ धड़ल्ले से बिक रहे हैं। और पुलिस के जानते बूझते बिक रहे हैं क्योंकि हर चौकी का मासिक बंधा हुआ रहता है। भारतीय समाज में अनैतिकता के नग्न नृत्य को देखकर बड़ा दुःख होता है। क्या यही है राम-कृष्ण महावीर और बुद्ध की धर्म भूमि जहाँ धर्म की मन्दाकिनी हिलोरें लेती थी जहाँ समाज में प्रतिदिन काम अपवाद स्वरूप होते थे। किन्तु आज जीवन के हर क्षेत्र में मायाचारी का बोलबाला है। साहूकार भी मायाचार में फँसा है और भिखारी भी उससे मुक्त नहीं है। सुना है भीख मांगना भी एक धंधा हो गया है। अब भीख मांगना मजबूरी नहीं है बल्कि वह अन्य धंधों की तरह एक स्वतन्त्र और कमाऊ पेशा बन गया है। उसके लिए लोग कोढ़ी बनते हैं अन्धे और गूंगे बनते हैं। पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी इस पेशे में सुलकर भाग ले रही हैं। कुछ सूखे और दुष्काल का बहाना बना कर घर घर मांगना

फिरती हैं। हमने यह भी सुना है कि भिखारियों के भी ठेकेदार होते हैं। वे कुछ भिखारियों को नौकर रखते हैं। कुछ बालकों और बालिकाओं को उठा कर उनके हाथ पर ताड़ देते हैं और उनसे भीख मांगने का पेशा कराते हैं। बालक अपनी दयनीय दशा से दूसरे के मन में करुणा उपजाकर काफी कमाई करते हैं। ठेकेदार शाम को प्रत्येक भिखारियों को अपने अड्डे पर ले जाता है और वहां सबसे पैसे इकट्ठा कर लेता है। मायाचार के बारे में एक कथा आती है—

एक वृद्ध धर्मात्मा किसान था। खेती करता था। खेत में एक ब्राह्मण आया। उसने वृद्ध की झोपड़ी देखी तो वह वहां गया और भोजन के लिए सीधा मांगने लगा। ब्राह्मण ने कहा—मैं तुम्हें चिट्ठी देता हूँ। तुम घर चले जाओ और वहाँ मेरी स्त्री से सीधा ले लेना। प्रतीति दिलाने के लिए उसने अपनी लकड़ी भी उसे दे दी। उसने बताया कि मेरी स्त्री बड़ी पतिव्रता है। वह बच्चों को भी स्तन पर हाथ नहीं लगाने देती है। ब्राह्मण के मन में उसकी स्त्री के प्रति बड़ा आदर का भाव हो गया। किन्तु वृद्ध के घर पर जा उसने देखा यह उससे बिल्कुल विपरीत पाया। वृद्ध की युवा पत्नी अपने यार के साथ रंग रलियां कर रही थी। उसने वृद्ध को आकर सब घटना कह सुनाई। वृद्ध को विश्वास नहीं हुआ। वह स्वयं आया और ब्राह्मण द्वारा बताई हुई बात को आंखों से देखकर उसे वैराग्य हो गया। वह वहाँ से चल दिया। मार्ग-व्यय के लिए उसने कुछ सोने की मुहरें एक बांस की पोली लाठी में रख ली। वह ब्राह्मण भी साथ में चल दिया। मार्ग में ब्राह्मण को उस लाठी का रहस्य पता चल गया और मौका पाकर वह उस लाठी को उठाकर रफूचक्कर हो गया। वृद्ध आगे गया। उसने देखा एक तालाब में एक बगुला एक पैर पर बड़ी देर से खड़ा है। उसे बड़ी श्रद्धा हुई उस बगुले पर। किन्तु थोड़ी देर बाद बगुले ने मछली पर झपट्टा मारा और खा गया। वृद्ध को बड़ी ग्लानि हुई। वह आगे बढ़ा

वहाँ जंगल में कुछ साधुवेषी डाकू रहते थे। वह साधु बन गया और उन डाकुओं ने ठहरने को जगह दे दी। वह उनकी हरकतें चुपचाप देखता रहा। उसने देखा—डाकू रात में चुपचाप उठे और राजमहल से चोरी करके बहुत सामान ले आये। वह देखता रहा सब। चोरी का पता पुलिस को चला और उस पर सन्देह करके उसे पकड़ ले गई। जब पुलिस उसे बाजार में हाकिम के पास ले जा रही थी वह हँस रहा था दुनिया की मायाचारी पर। एक वेश्या ने उसे देखा और उससे रास्ते में हँसने का कारण पूछा। उसने चोरों के बारे में सब बात बतायी। चोर पकड़े गए और सारा माल बरामद हो गया।

यह कुटिलता और मायाचार निकले कैसे? ज्ञान को शुद्ध करना है तो उसे पीसना पड़ेगा तब उसमें कोमलता आयेगी। कपड़े को साफ करने के लिए पीटना पड़ता है। इसी प्रकार आत्मा की कुटिलता दूर करने के लिए जब तक तप की मार नहीं मारेंगे तब तक आत्मा नरम नहीं हो सकती। उत्तम आर्जव धर्म आत्मा की कुटिलता निकालकर उसे ऋजु बनाने के लिए आता है। घर में सोना पड़ा हुआ है। उसका उपयोग नहीं होता तो उसकी कोई कीमत नहीं है। आत्मा को जान लिया-जान लिया इतना कहने मात्र से काम नहीं चलेगा जब तक आत्मा को कोमल बनाने का पुरुषार्थ नहीं किया जायगा।

हमने मकान बनाया। दीवारें खड़ी कर लीं। उन्हें खूब रंग रोगन करके सजाया था। किन्तु यदि दीवाल पर छत नहीं तो बरसात से बचाव नहीं हो सकता। उत्तम आर्जव धर्म की यही दृष्टि है कि आत्मा निराश्रय है। वह अपने आत्म स्वरूप के आश्रय में ठहर जाय और इसके लिए आर्जव धर्म सर्वाधिक उपयोगी है।

हम भगवान की पूजा करते हैं। हमारी दृष्टि समय पर रहती है—दुकान का टाइम हो गया। दृष्टि पूजा पर नहीं समय पर है। हमारा लक्ष्य है दुकान भगवान नहीं। और हम भगवान की पूजा का आयोजन

करके भगवान् से भी मायाचारी करते हैं। हम भगवान् के पास जाते हैं। वहाँ जाकर बहुत कुछ कहते हैं किन्तु उसे मानते नहीं हैं। बार बार यही होता है तब भगवान् भी कहता है—तूने मुझे छोड़ दिया जा मैं भी तुझे छोड़ता हूँ।

हम इन्द्रिय विषयों के वशीभूत होकर इधर उधर भटक रहे हैं। कुटिलता के कारण जिनवाणी की बात को नहीं सुनते हैं। इस मन की कुटिलता के कारण ही हम सिद्धालय नहीं जा पा रहे। मन मन को धर्म की खूंटी में बांधो तभी तुम्हारी कुटिलता निकल सकेगी।

लोग हमारे व्यवहार को जानते हैं। हमारी बोलचाल को परखते हैं। यदि हमारे व्यवहार में मायाचार की बू आती है तो लोग हमारे साथ व्यवहार करना भी बन्द कर देते हैं। कोई लिखा पढ़ी नहीं केवल विश्वास है जिसके ऊपर व्यापार होता है सारा का व्यवहार होता है। यदि बाजार में किसी व्यापारी का मायाचार प्रगट हो जाता है तो लोग उस पर विश्वास नहीं करते व्यवहार नहीं करते। सौदा बन्द हो जाता है।

एक कौआ मोर की पंख लगाकर मोरों के साथ आ गया। किन्तु जब मोर नाचे तो कौए से नहीं रहा गया। वह भी नाचा। उसकी मायाचारी का भण्डा फूट गया और मोरों ने चोंच मार मार कर उसे भगा दिया। तब वह कौओं में पहुंचा और वहाँ भी उसकी यही दशा हुई। वास्तव में मायावी पर कोई विश्वास नहीं करता। अतः हम अपना व्यवहार अत्यन्त सरल बनाना चाहिये।

मनस्येकं वचस्येकं वपुष्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् वपुष्यन्यत् दुरात्मनाम्॥

अर्थात् मन वचन और काय तीनों में एकरूपता महात्माओं का लक्षण है और मन में कुछ और वचन में कुछ और काय में कुछ और यह दुरात्मा व्यक्तियों का काम है।

गाढ़ प्यार से धारण किया जाता है। इसलिए निरभिमानता में ही धर्म है।

दुनिया बाहरी असत्य रूप को ही सत्य मानकर सुख ले रही है। जितने २ सुख हाथ आ रहे हैं उतने २ यह आत्मा दुखी होती जा रही है क्योंकि जो वस्तु असत्य होती है उसको ग्रहण करने से हमेशा उसका सारा दुःख ही उठाना पड़ता है। विचार करके देखा जाय तो असली अवस्था अपने अन्दर ही है। परन्तु जब तक सत्य तथा असत्य का निर्णय नहीं होता है तब तक इस जीव को सत्य की प्रतीति नहीं होती है कवि ने कहा भी है कि—

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे बन मांहि।
ऐसे घट में पीव है, दुनिया जाने नाहि

हे संसारी प्राणियो! हमारा यह जीवन आत्मा के ऊपर स्थिर हुआ है। अगर आत्मा है तो जीवन है और यदि आत्मा नहीं है तो जीवन भी नहीं है। इसका सार यह हुआ कि शरीर जिन्दा नहीं रहता आत्मा जिन्दा रहती है। हृदय जीवित नहीं रहता पर आत्मा जीवित रहती है। इस दृष्टिकोण से यदि हम सही रूप से विचार करें तो ज्ञात होगा कि यह आत्मा प्रकाशवान सूर्य के समान है। और इसी का प्रकाश इस शरीर और इन्द्रियों तथा मन में पड़ रहा है। और जो पर पदार्थ है उन पर भी पड़ रहा है। तो हमें यह ठीक तौर पर विचार कर लेना चाहिए कि वह आत्मा अपनी शुद्ध स्थिति में भी है या नहीं अथवा उसके ऊपर कोई आवरण आया हुआ है या नहीं? जब आत्मा अपने प्रकाश में रहता है और शुद्ध स्थिति में रहती है उस समय आत्मा में ज्ञान की ज्योति जलती रहती है। जब शक्ल शुद्ध स्वरूप अन्दर में जागृत स्थिति में रहती है उस समय आत्मा में ज्ञान की ज्योति जलती रहती है। सच्चा शुद्ध स्वरूप

अन्दर से जागृत होता है। दया, क्षमा या करुणा का प्रकाश उसमें से फूटता है। और सारा जीवन जगमग जगमग करने लगता है। जब यह जीवन जगमगाहट करता है तो ऐसी आत्मा जिस परिवार में रहती है वह परिवार भी जगमगा उठता है। उसके आसपास के समाज भी जगमगाते हैं। उसके चारों ओर का वातावरण एक प्रकार से अलौकिक प्रकाश से चमकने लगता है।

लेकिन जब आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में नहीं रहती है और आवरण से घिर जाती है तब वह आवरण चाहे मिथ्यात्व का हो या चाहे अविरत का हो अथवा असंयम का हो चाहे प्रमाद का हो चाहे कषाय का हो चाहे योग का हो। यानी किसी भी भाव का हो। जैन शास्त्रों की परिभाषा में इन सभी शब्दावलियों का प्रयोग किया गया है। संक्षेप में यदि आप इसको समझें तो इसका अर्थ यह है कि जब तक सच्चा विश्वास नहीं होता है जब तक श्रद्धा-सच्ची जीवित श्रद्धा नहीं होती तब तक मनुष्य मिथ्या विश्वास में फंसा रहता है। और यह मिथ्या संकल्प अपने जीवन के सम्बन्ध में भी होते हैं, पारिवारिक प्रथाओं के सम्बन्ध में भी होते हैं, समाज और राष्ट्र के सम्बन्ध में भी मिथ्या विश्वास होता है।

जब तक मिथ्या विश्वास रहता है तब तक चाहे साधु हो अथवा गृहस्थ हो वह सच्चे सुख को कदापि नहीं प्राप्त कर सकता। आज कल संसार में अनेक धर्म, अनेक संत हैं तथा अनेक शास्त्र हैं पर इन सभी धर्मों और भिन्न भिन्न शास्त्रों में सभी यही प्रश्न उठता है कि आत्मा क्या है इस सम्बन्ध में हजारों मिथ्या विश्वास हैं। परमात्मा और मोक्ष क्या है इस विषय में भी हजारों मिथ्या विश्वास हैं। इस प्रकार से जीवन जब मिथ्या विश्वासों से घिर जाता है तब अपने सही स्वरूप को नहीं पहचान पाता। अपने शुद्ध स्वरूप की स्थिति को नहीं समझ पाता। तब यह जीव अनेक निम्न योनियों में चक्कर काटता रहता है और उसका किनारा प्राप्त करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

व्यवहार में भी कहा है कि सत्य ही जीवन की शोभा है। किसी के शरीर में सब अंग बहुत सुन्दर हो परन्तु केवल नाक न हो तो क्या वह सुन्दरता पा सकेगा? जैसे नाक के बिना शरीर असुन्दर लगता है उसी प्रकार सत्य के बिना आत्मा निर्धन हो जाता है। एक बड़ा विशाल मकान जो लाखों रुपये में बनाया हुआ हो परन्तु उसमें रहने वाला कोई न हो तो वह उजाड़ मालूम होगा। इसी तरह हमारे जीवन में रुपया पैसा आदि सब कुछ हो परन्तु सत्य न हो तो हमारा यह जीवन उजाड़ अथवा शून्य होगा। मुर्दे का चाहे जितना भी शृंगार किया जाये उससे कोई लाभ नहीं होगा। इसी तरह मनुष्य में सत्य न हो तो अन्य सब गुण बेकार हो जाते हैं। संसार में प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य की इज्जत या शान केवल असत्य के कारण ही बिगड़ जाती है। आज हमारे धर्म शास्त्रों में अनेकों उदाहरण भरे पड़े हैं। राजा वसु ने केवल ब्राह्मण स्त्री का पक्ष ले असत्य को सत्य साबित किया था। फलतः शीघ्र ही बैठे हुए दरबार में उनका सिंहासन नीचे धुस गया था। इतना ही नहीं उनका अपमान हुआ। अन्त में उनको असत्य के निमित्त से नरक में जाना पड़ा। इसी तरह और भी अनेक कथाएं मौजूद हैं। पुरोहित सत्यघोष ने सत्य के रूप में असत्य का प्रचार किया था जब उनका असत्य प्रगट हुआ तो उनको गोबर खाना पड़ा अन्त में बड़े पहलवानों के द्वारा घूसों की मार को सहन करना पड़ा। उसी के दुःख से नीच गति में जाना पड़ा। आगे उनको जन्म की यातना उठानी पड़ी। इसी तरह व्यवहार जगत में असत्य बोलने वाले मनुष्य का कोई विश्वास नहीं करता है। आज दुनिया के व्यवहार में केवल असत्य को सत्य का नाम दे करके हजारों लोगों को ठगा जा रहा है। इसलिए प्रत्येक मानव को जहाँ तक हो सत्य व्यवहार करना चाहिए। अन्त में जब मनुष्य भव को छोड़कर यह आत्मा चला जाता है तब उसको उठा कर ले जाने वाले भी यही मुख से बोलते

है कि अरहृत नाम सत्य है हिन्दू हो तो राम नाम सत्य तथा मुस्लिम भी अल्लाह का नाम सत्य में नाम से पुकारते हैं। प्राय यह भी देखा जाता है कि मनुष्य जन्म जब मिलता है तभी वह अपने साथ सत्य का बल लेकर आता है। बच्चा जब पैदा होता है तब अपनी माता के साथ सहज ही सम्बन्ध हो जाता है उसी प्रकार सत्य का भी मनुष्य से स्वाभाविक सम्बन्ध है जो कि जन्म से ही होता है। प्रत्यक्ष में भी हम देखते हैं कि जब बच्चा छोटा होता है, वह सत्य ही बोलता है। वह झूठ बोलना जानता ही नहीं है। लेकिन मनुष्य जब उसकी सत्यता पर चोट करते हैं तब वह बच्चा झूठ बोलना सीख जाता है। वह समझ लेता है कि मेरा सत्य बोल पर यह लोग मेरा उपहास करते हैं। भला उपहास कराना किसे अच्छा लगता है। इसी डर से वह झूठ बोलना सीख जाता है। इससे आप यह भली भांति समझ सकते हैं कि झूठ बोलना सीखना पड़ता है। सत्य बोलना नहीं। यह किसी से सीखा नहीं जाता। आजकल दुनिया में बहुत से हिन्दूजन सत्य नारायण की कथा का आयोजन करते हैं परन्तु उसका अर्थ नहीं समझते हैं। जब तक सत्य का आचरण नहीं किया जायगा तब तक सत्यनारायण का प्रसन्न नहीं किया जा सकता। अहिंसा का विचार जब तक हम नहीं करेंगे तब तक सत्य की प्रतीति हमारे अन्दर नहीं उतर सकती है। परन्तु लोग यह कहते हैं कि असत्य के बिना जीवन नहीं चल सकता है। ऐसा कहना असत्य है। अहिंसा में अपवाद हो सकता है पर सत्य में इसकी गुंजाइश नहीं होती। वह पूर्ण होता है। उसे पूरा ही पालन करना पड़ता है। इसलिए अहिंसा का जहाँ अपवाद बताया गया है वहाँ पर सत्य को भगवान माना गया है। कहा भी है कि —

सत्यमेव जयते नानृतम्

सत्य की ही जय होती है। बाह्य दृष्टि से भले ही असत्य के आगे सत्य प्राणी हारता हुआ दिखाई दे परन्तु अन्त में नतीजा यह होता

उत्तम सत्य धर्म

सत्यमेव जयते (संसार में सत्य की ही जय होती है)

सत्य ही आत्मा का निज धर्म है। आत्मा को छोड़ करके जितनी भी पर वस्तु हैं सब असत्य हैं। यह आत्मा अनादि काल से असत्य वस्तु के संगम से अपने सत्य को भूल कर असत्य की प्रतीति कर रहा है। आज संसार में जो भी पंचेन्द्रिय सम्बन्धी सुख की सामग्री हमारे सामने दिखाई दे रही है यह भी सत्य की आराधना से ही प्राप्त होती है। असत्य में पड़ा हुआ यह आत्मा असत्य की आराधना करते करते असत्य रूप संसार में परिभ्रमण कर रहा है। सत्य स्वरूप निजात्मा का जो स्वरूप है उस स्वरूप की आज तक उसको प्रतीति नहीं हुई है।

अगर विचार करके देखा जाय तो असली शक्ति अपना ही स्वरूप है। यह स्वरूप तीन विभाग में हमेशा मनन किया जाता है—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र। ये अपने स्वरूप से कभी अलग नहीं होते हैं। परन्तु आज अगर विचार करके देखा जाय तो हमसे भिन्न जो असत्य वस्तु है वह वस्तु हमको सत्य रूप में प्रतीत हो रही है। दुनिया आजकल असत्य वस्तु को रात दिन दौड़ धूप करके प्राप्त करना चाहती है और उसी से शान्ति प्राप्त करना चाहती है। लेकिन आज तक असत्य वस्तु से किसी को शान्ति प्राप्त नहीं हुई है। दुःख ही दुःख प्राप्त हो रहा है। मानव सारी दुनिया को अपने वश में करना चाहता है और वश में करने के लिए हजारों असत्य षडयंत्र की रचना रचता है परन्तु उसमें तिलमात्र भी सुख और शान्ति नहीं है और सत्य की प्रतीति नहीं है। सत्य आत्मा का धर्म है। जब सत्य को असत्य माना जाता है तब मानव हमेशा दुःख पाता है।

संसार में प्राय देखा जाता है कि स्त्री अपने पति का हमेशा स्मरण करती रहती है उसे अपनी नजर के सामने रखती है

भी उसकी आराधना करती है। बाद में विधवा होने पर भी याद करती है। परन्तु पर पुरुष का याद नहीं करती है। उसको कितना भी दुःख क्या न हो उस दुःख को शान्तिपूर्वक सहन करके अपने पति का स्मरण करके अपने जीवन को बीताती है इसी तरह ॥ आज संसार में सत्य जो है वह आत्मा का धर्म है और जो सत्य है वही जैन धर्म है—परम अहिंसा धर्म। वही आत्मा का सच्चा स्वरूप है शेष सब असत्य है। असत्य को सत्य समझ कर हजारों झूठ बोले जाते हैं। इस मानव को इसी असत्य से तकलीफ उठाना पड़ती है। कहा भी है कि—

सत्य की आज्ञा में खड़ा हुआ विवेकी पुरुष मृत्यु को भी जीत लेता है। हमारे प्राय शास्त्रों में भी कहा है कि सत्यं शिव सुन्दरम्। यह ग्रीस की संस्कृति से हमारे यहां आया हुआ एक सूत्र है और उस सूत्र को हिन्दुस्तान की संस्कृति में भी ज्यादातर माना जाता है। The truth the good the beautiful

ये ही वाक्य सूत्र हमने सत्यं शिव सुन्दरम् के रूप में अपना लिया है। सत्य सुन्दर है और कल्याणकारी है। लेकिन बहुत ॥ लोग सुन्दरता में ही सुख मान लेते हैं। एक तत्ववेत्ता के पास एक ऐसा ही व्यक्ति आया जो सुन्दरता में ही सुख मानता था। उसने कहा कि जब सुन्दरता में सुख रहता है तो सत्य और शिव को मानने की आवश्यकता क्या है। जो जितना अधिक तत्ववेत्ता होता है वह उतना ही गहरा होता है। मकान जितना भी ऊंचा होता है उतना ही गहरा होता ॥। तत्ववेत्ता ने उससे पूछा कि क्या तुम्हें सुन्दरता ही प्रिय है? उस व्यक्ति ने कहा कि हाँ। तब तत्ववेत्ता ने कहा—अगर आपको कोई सुन्दर सुन्दर गालियां दे तो क्या आपको अच्छी लगेगी। व्यक्ति ने कहा—नहीं। तत्ववेत्ता ने दूसरी तरह से समझाकर कहा—अगर तुम्हें कोई फूलों के बजाय किसी नन्हे बच्चे के हाथ काट कर दे तो तुम्हें प्रिय होंगे। तब उसने समझा कि कोरी सुन्दरता ही काम की नहीं है। एक स्त्री बड़ी रूपवती हो, गौरवर्ण की

हो सुन्दर और अच्छे वस्त्र आभूषण धारण करती हो परन्तु वह लड़ने वाली हो तो क्या सबको प्रिय लगेगी अर्थात् किसी को न लगेगी। देखने में सुन्दर हो यह हम लगा चाहिए लेकिन सत्य एवं शिव युक्त होना चाहिए। कोई स्त्री सुन्दर क्यों न हो परन्तु अपने पति को अपने प्राण से अधिक चाहती हो और दूसरी स्त्री अपने पति से नफरत करती हो उन दोनों में सुन्दर कौन होगा? सत्य और शिव के अभाव में सुन्दरता का मूल्य कुछ नहीं होता। यह अभिप्राय क्या होता है। एक समय की बात है कि—

राजा भोज अपने पंडितों की मण्डली में बैठे थे। उस समय एक पण्डित अभिमान के नशे में चूर होकर कहने लगा—महाराज! एक दोहा बड़ा बढ़िया है और उसके भाव भी बहुत अच्छे हैं। वह दोहा यह है—

मर्द तो है मूछ बाँका, नार बाँकी गोरिया।
गाय तो है सींग बाँकी, रंग बाँकी घोरिया॥

अर्थात् मर्द वही है जिसकी मूँछ बाँकी हो और नारियाँ वही हैं जिनके नयन बाँके हों, गाय वही है जिसकी सींगें बाँकी हों और घोड़ा वही है जिसका रंग मनोहर हो।

पंडित महोदय और महाराज भोज के बीच यह चर्चा चल रही थी कि उसी समय भेड़ चराने वाला एक गड़रिया भेड़ लिए वहीं से गुजरा। उसे भी उल्लिखित दोहा सुनाई दिया। वह मामूली पढ़ा लिखा था। यह दोहा उसे बहुत अखरा। अतः वह कहता हुआ आगे बढ़ा—

चल म्हारी टूटी, ये चारों वार्ता झूठी।

राजा भोज ने यह वाक्य सुना तो गड़रिया को बुला लाने की आज्ञा दी। वह गड़रिया सभा में लाया गया। राजा भोज ने कहा कि

तुम इन चारों बातों को झूठा कैसे कहते हो ? गडरिये ने हंस कर कहा—

यह पंडित है बड़ा अनाड़ी,
इसके मारू खींच कुल्हाड़ी।
इसने सारी सभा बिगाड़ी,
मुख से झूठी बातां काढ़ी ॥

महाराज ! किसी मर्द की मूछें हैं तो बांकी पर यदि वह शत्रु से भी गया बीता है तो उसकी मूछें किस काम की ? किसी स्त्री की आंखें तिरछी हैं और वह कुलटा है तो उसकी आंखें किस मतलब की ? गाय की सींग बांकी है पर यदि वह दूध नहीं देती तो किस काम की ? इसी तरह घोड़ी का रंग अच्छा है पर उसकी चाल गधी सरीखी है तो वह निकम्मी ही है। अब आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि इन चारों बातों में कहां तक सत्य है। पृथ्वीनाथ ! ये चार बातें सत्य हैं —

मर्द तो रण शूर बांका, शील बांकी गोरिया।
गाय तो है दूध बांकी चाल बांकी घोड़िया ॥

मर्द वही है जो युद्ध के समय अपनी शूरवीरता से शत्रुओं के छक्के छुड़ा देता हो। स्त्री वही है जो शीलवती हो। गाय वही है जो दूध देती हो। घोड़ी वही अच्छी है जिसकी चाल अच्छी हो। गडरिया का यह व्याख्यान सुनकर महाराज आज बहुत प्रसन्न हुए। यह तो एक उदाहरण है। तात्पर्य यह है कि उस पंडित ने अभिमान किया था। अतः उसे अपमान सहन करना पड़ा। इस प्रकार अभिमान में अधर्म और निरभिमानता में धर्म है। जो अभिमान त्याग कर जितना नम्र बनता चला जाता है वह उतना ही उच्च पद प्राप्त करता है। मैं-मैं करने वाले बकरे का गला काटा जाता है मैना कहने से मैना का चाव और

मरना ही पसन्द है। तब अगर ये देखना चाहो तो कल इसके पास जंगल में आना और वहीं पर देखना। दूसरे दिन राका और बांका लकड़ी काटने के लिए जंगल में निकले। नामदेव पहले से ही जंगल में जाकर एक पेड़ के पास छिप गया। राका और बांका आ रहे थे। अचानक मार्ग में एक थैली पर राका का पैर लग गया और उसमें से खन खन की आवाज हुई। वह उस माया को पाप की थैली समझ कर धूल से ढकने लगा ताकि उसकी पत्नी की नजर उस पर न पड़े। जब वह उस पर मिट्टी डालने लगा तो उसकी पत्नी ने कहा कि यह क्या कर रहे हो। राका ने कहा—यह सोने की मोहरों की थैली मालूम होती है उस पर अगर धूल न डालूं तो उसको देखकर तेरा मन दूषित होगा। मन में उस धूल से डर रहा हूं। बांका ने कहा—ये तो धूल ही है। धूल पर धूल डालने से क्या लाभ।

धर्मप्रिय बन्धुओ! सोना और हीरा धूल ही तो है। आप इस मन ही सोना या हीरा कह दीजिए वह धूल ही है। परन्तु आज की दुनिया में प्रत्येक प्राणी पागल हुई धूल के पीछे अपना अमूल्य जीवन बरबाद कर रहे हैं। जितना अनाज है यह मनुष्य की जरूरत के लिए ही संग्रह करना चाहिए पर इसके पीछे अमूल्य जीवन खो देना कहाँ की बुद्धिमानी है। उन मनुष्य को अगर सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त करना है तो उनको इस धूल का मन त्याग करने की आवश्यकता है। जब तक लोग स्वार्थ रूपी धूल को भीतर से नहीं हटायेंगे तब तक हमारा आत्मा की शुद्धि नहीं हो सकती है। मानव सोना चांदी रूपी धूल का संग्रह करते भी कभी यह विचार करता है कि मैं यह सब संग्रह क्या कर रहा हूँ। इसका अगर आप विचार करेंगे तो आपका संग्रह बिल्कुल निरर्थक प्रतीत होगी मनुष्य जिसका संग्रह करता है वही धन कभी कभी उसकी मृत्यु का कारण बन जाता है। मनुष्य को यह सारी पृथ्वी दे दी जाये तो भी उसकी आत्मा तृप्त नहीं हो सकती। उसकी आत्मा

तो निर्लोभ वृत्ति से ही शान्त हो सकता है। यह ही मोक्ष मार्ग की प्राप्ति की दूसरी सीढ़ी है।

लोभ से हानि

किसी एक नगर में एक लोभी साहूकार रहता था। उसको यही शौक था कि सोने की प्रत्येक वस्तु का सारा का सारा अपने पास रखता था। उसने अत्यन्त लोभ से पैसा कमा कर सोने के दो घोड़े और की जोड़ी तथा हाथी आदि सब बनवा कर तहखाने में रख लिये और वहीं एक आराम कुर्सी पर बैठ करके हमेशा मन में सन्तोष मानता था यह बात देव को मालूम हुई तब उसके लोभ की परीक्षा करने के लिए उसके घर पर पहुँचा और साहूकार को तुरन्त ही आवाज दे करके बाहर बुलवाया। सेठ ने तुरन्त उठ कर किवाड़ खोला देखता है कि एक देव बाहर खड़ा है। सेठ ने आने का कारण पूछा तो देव ने कहा कि मैं आपकी आशा की तृप्ति करने आया हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो सेठ मन में विचार करने लगा देव तो जो चाहो सभी दे सकता है। अब उससे क्या मांगना चाहिए। कोई जमीन मांगू तो भी मेरी आशा पूरी नहीं होगी या कोई राज्य मांगू तो इससे भी मेरी आशा पूरी नहीं होगी या किसी एक गाय या बैल के लिए सोना मांगू तो इससे भी तृप्ति नहीं हो सकती है। इसलिए मुझे ऐसा वरदान मांगना चाहिए कि जिस जिस वस्तु का मैं स्पर्श करूँ वह सभी सोना बन जाय। तब देव ने तथास्तु कहा और वहाँ से चला गया। तत्पश्चात् सेठ ने अपनी कुर्सी को हाथ लगाया तो वह कुर्सी सोने की बन गई। कपड़े को हाथ लगाया वह सब सोना बन गया। घर की दीवार को हाथ लगाया है वह दीवार भी सोने की बन जाती है। इस तरह से वह आनन्द में मग्न हो कर प्रत्येक वस्तु को स्पर्श करता है। वह सभी सोना बन जाता है। उस समय १२ बजे का समय था। घर वाली ने सोचा कि सेठ जी अभी तक खाना खाने नहीं आये। क्या कारण है। उसने बाहर आकर देखा

कि वह माला बना हुआ है। वह मठ से भ्रमण के लिए जाता है। तब वह पानी के लोटे के हाथ लगता है तो वह भी माले का हो जाता है। जब थाली को स्पर्श करता है वह भी माला का बन जाता है। जब साग भाजि का स्पर्श करता है वह भी माला बन जाता है। अन्त में अपनी धर्मपत्नी से कहता है कि तुम अपने हाथों से मेरे मुँह में ग्रास डाल दो। वह भी मुख में आकर माल का बन जाता है। इससे उसको बड़ी वेदना होने लगती है। अन्त में मन में विचार करता है कि यह माला मुझे दुःखदायी हो गया। फिर मन में विचार करने लगा कि यह सभी बुरी लोभ कषाय का परिणाम है। वह तुरन्त ही लोभ कषाय का त्याग करता है और उसी देव की आराधना करता है। तब देव आता है और सब के वह अनुसार उसका दुःख दूर कर देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि लोभी मनुष्य कभी भी सुख और शान्ति नहीं पा सकता है।

बाह्य सम्पत्ति हमेशा क्षणिक है और उसके द्वारा होने वाले पंचेन्द्रिय विषय भी आत्मा को अनेक प्रकार के दुःख देने वाले हैं। इसीलिए बड़े बड़े पुण्यात्मा आत्मा ने क्षणिक पंचेन्द्रिय सम्बन्धी विषय सुख को इस तरह से माना है—

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यम्,
आपातमात्रमधुरो विषयोपभोगः।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणां,
धर्मः सखा परमहो परलोकयाने॥

इस समस्त पृथ्वी तल का आधिपत्य वायु के वेग से तितर बितर हुए मेघ के समान अस्थिर है तथा मानव सम्बन्धी समस्त विषयोपभोग आपात मधुर हैं अर्थात् उपभोग काल में ही ये विषयोपभोग मधुर होते हैं, परिणाम में नहीं। तथा मनुष्यों के प्राण तृण के अग्रभाग पर

रहे हुए जल बिन्दु के समान चंचल हैं, यथा न जाने ये प्राण पखेरू कब इस तन को छोड़कर उड़ जायेंगे। अहो! यह कितने आश्चर्य की बात है, कि इन नश्वर वस्तुओं के लिए मनुष्य घोर प्रयत्न करता रहता है तो भी ये सभी वस्तुएं मनुष्य के सदा सहचर नहीं होती। सदा सहचर है तो एक मात्र धर्म ही है जो परलोक प्रयाण काल में भी साथ नहीं छोड़ता अर्थात् परलोक जाने के समय मनुष्यों का एक मात्र साथी धर्म ही होता है।

यह शरीर अत्यन्त अशुद्ध है। इस शरीर में कोई भी वस्तु ग्रहण करने योग्य नहीं है। यह शरीर सप्त धातु से युक्त है। इसमें कोई भी सार वस्तु ढूंढें भी नहीं मिलती। परन्तु मूढ़ प्राणी अनादि काल से महा अशुच शरीर के ऊपर मोहित हो कर अनेक निंद्य पर्यायों में जन्म लेकर अनादि काल से दुःख उठा रहा है। इस शरीर के मोह में जीव चौरासी योनियों में भ्रमण करता आ रहा है। मानव शरीर के रूप पर मोहित होकर उसकी प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न करता है। यह बाहर की सफाई की तरफ ज्यादा ध्यान रखता है परन्तु भीतर की सफाई का कोई ख्याल नहीं रखता। आजकल दुनिया में मनुष्य के भीतर की भावना गन्दी गन्दी होती जा रही है कि जो उसके पास खड़ा होता है उसको भी गन्दा बना देता है। आजकल इस बाहरी सफाई के विषय में बड़ा भ्रम फैला हुआ है। अधिकांश लोग बाहरी ही सफाई करते हैं। बाहर के कपड़े शरीर की सफाई के लिए साबुन से काम लेते हैं परन्तु साबुन से केवल बाहरी सफाई होती है भीतरी काम कषाय की सफाई नहीं हो सकती। शरीर की जितनी जितनी सफाई करते जाओ उतनी उतनी उसकी गन्दगी निकलती रहती है। जैसे कच्चे घड़े में पानी भर कर रख दिया जाय तो धीरे धीरे मिट्टी घुलने लगती है उसी प्रकार अगर इस शरीर को साबुन लगाकर रात दिन सफाई की जाय तो भी इसकी सफाई नहीं होती। हमेशा इसके अन्दर से दुर्गन्ध निकलती रहती

कि सत्य की विजय होता है और वह भय व दास बन कर रहता है। इसलिए महान तावद्भूरा न सत्य और असत्य का विचार करके असत्य रूप आत्मा के साथ हमेशा रहकर दुःख देने वाली बाह्य सम्पत्ति आदि को छोड़कर सत्य की खोज की तब वह सत्य अनादि काल से असत्य के अन्दर छिपा हुआ मालूम हुआ। तत्क्षण उसको दूर करने के लिए पार अपना पवन के चोटी पर जा करके असत्य का पूर्णतया मन वचन काय से विनाश किया। और सम्यग्ज्ञान के साथ साथ उसकी प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ के साथ आचरण किया। इसलिए आज भी लोग उन्हीं भगवान को सत्य कहते हैं नित्य रूप कहते हैं और वे ही दुनिया में सुन्दर कहलाते हैं। ऐसा सुन्दर वस्तु अपने पास ही है परन्तु आज हमको दिखाई न देने से असत्य की ओर जा रहे हैं। मनुष्य को हमेशा सत्य बोलना चाहिए। संसार में व्यवहार भी सत्य से ही चलता है। असत्य के प्रकट होने से लोक निन्दा होती है व्यवहार बिगड़ जाती है तथा लोक व्यवहार आदि करना बन्द कर देते हैं।

लोक व्यवहार भी तभी चलता है जब सत्यता को रखते हैं। बड़े २ लोग लाखों रुपये का बड़े २ व्यवहार करते हैं वह सभी सत्य का ही प्रभाव है। सत्यवादी लोग संसार में धोखा नहीं खाते हैं। सभी जगह सम्मानित होते हैं। इसलिए सत्य पुरुष को सज्जन पुरुष के नाम से भी पुकारा जाता है। उदाहरणार्थ व्यवहार में भी देखा जाता है—उज्वल वाणी में एक बार पढ़ने में आया था कि अमेरिका के एक प्रसिद्ध इतिहासकार विलियम लोथिया ने एक दिन किसी लड़की को सड़क पर रोते हुए देखकर रोने का कारण पूछा। लड़की ने कहा—मेरा घड़ा फूट गया है। अगर मैं अब यूं ही घर जाऊं तो मेरी मां मुझे मारेगी। यदि आपको फूटा घड़ा जोड़ना हो तो जोड़ दीजियेगा। इतिहासकार ने कहा कि घड़ा जोड़ना तो नहीं आता परन्तु मैं तुम्हें पैसे दूंगा। तुम दूसरा घड़ा खरीदकर ले जाओ तो तुम्हारी मां कुछ नहीं कहेगी। यह

कहकर उसने अपने बटुए में हाथ डाला तो बटुआ खाली मिला। उसने लड़की से कहा—अभी मेरे पास पैसे नहीं हैं अगर कल तुम यहीं इसी समय मिलो तो मैं तुम्हें जरूर पैसे दे दूंगा। आज अपनी माता जी से कह देना कि पैसा कल लाऊँगी। लड़की ने विश्वास किया और अपने घर चली गई। इतिहासकार भी जब अपने घर आया तो उसे अपने मित्र का एक तार मिला जिसमें लिखा था कि कल स्टेशन पर तुम मुझसे जरूर मिलना। स्टेशन पर जाने का समय वही था जो उसने उस लड़की को दिया था। अतः अब वह कुछ दुविधा में पड़ गया। उसने सोचा—मित्र या धर्म ? मित्र तो इस दुनिया का ही है। परन्तु धर्म तो परलोक का भी है इसलिए उसने धर्म का साथ देना ही स्वीकार किया। और स्टेशन पर अपने नौकर को भेजा और एक चिट्ठी अपने मित्र को दी कि मुझे एक आवश्यक काम है मैं नहीं आ सका इसके लिए क्षमा मांगी। वह चाहता तो नौकर को पैसे देकर लड़की के पास भेज सकता था लेकिन उसने अपने वचन का पालन करने के लिए ही ऐसा किया। तो इसका सारांश यह है कि प्रत्येक मानव प्राणी की वाणी में ऐसी ही दृढ़ता होनी चाहिए। सत्य का पालन करने के लिए ऐसी दृढ़ता का सेवन करना परम आवश्यक है। धन की हानि उठा ले पर सत्य की हानि नहीं उठानी चाहिए। अतः वचन की दृढ़ता अवश्य होनी चाहिए। इसलिए संसार में प्रत्येक मानव को अगर मानव जन्म की सफलता करके सत्य की खोज करना है तो व्यवहार में भी हमको सत्यता का व्यवहार करना चाहिए। आज दुनिया में देखा जाता है कि व्यापारी लोग किस तरह असत्य का व्यवहार करके दुनिया को अंधेरे में पहुंचाने की चेष्टा कर रहे हैं। आज कल बाजार की मिठाई में, तेल में, आटे में, घी में, मसालों में और भी जितनी चीजें हैं उनमें अन्दर मिलावट के अतिरिक्त कोई चीज शुद्ध खालिस दुकानों में नहीं मिल सकती है क्योंकि हमारे पास असत्य का व्यवहार सवार हो रहा है। इसलिए सुख और शान्ति इस मानव के अन्दर से दूर भागती जा रही।

है। ये मानव जन्म केवल असत्य वस्तु की प्राप्ति करने के लिए नहीं है अपितु सत्य की प्राप्ति के लिए है। असत्य के व्यवहार से यह जीव [illegible] योनि में जन्म लेकर अनेक प्रकार का दुःख उठा रहा है। जिसका सत्य की प्रतीति करता है उसका [illegible] हमेशा दुःख देने वाले असत्य को दूर कर चिदानन्द ज्ञान दर्शन उपयोग को आत्म स्वरूप की प्राप्ति में लगाना और असत्य का त्याग करना चाहिए यही मानव का धर्म है। इसलिए महान् साधकों ने हमेशा सत्य के अन्दर मग्न होकर इसका उपभोग किया है। इसलिए मानव को व्यवहार में भी हमेशा सदा सत्य का व्यवहार करना चाहिए।

उत्तम शौच धर्म

शौच धर्म आत्मा का स्वभाव है। हमारा निमित्त पर वस्तु से भिन्न सिद्ध आत्मा का स्वरूप उत्तम शौच कहलाता है। अपना शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वरूप है। उस निर्मल आत्मा का सम्पूर्ण पर वस्तु का मन वचन काय से त्याग कर ध्यान करना ही शौच है। व्यवहार में लोभ या तृष्णा का त्याग कर देना उत्तम शौच है। [illegible] और शौच में यह भेद है कि मनोगुप्ति से सम्पूर्ण मानसिक [illegible] का निरोध किया जाता है। जो ऐसा करने में असमर्थ हैं वह दूसरों के पदार्थों के लोभ का त्याग करते हैं। यह शौच कहलाता है। क्योंकि कहा भी है कि— लोभ पाप का बाप बखाना, इस कथन के अनुसार अन्तर के लोभ से आत्मा को मलिन करने के लिए निमित्त कारण है। [illegible] अनादि काल से लोभ कषाय से [illegible] होकर [illegible] परिभ्रमण कर रहा है। बाह्य शुद्धि के लिए लोग [illegible] नदियों में स्नान करते हैं। [illegible] तन [illegible] स्पर्श हो है। [illegible] कि [illegible]

अनेक बार डुबाने पर भी कड़वाहट नहीं जाती है। अन्दर से जैसा का तैसा ही रहता है। इसी प्रकार मनुष्य के भीतर का जब तक लोभ कषाय निकल नहीं जाता है तब तक बाह्य शुद्धि का कोई भी लाभ नहीं हो सकता है। आजकल लोग ज्यादा बाह्य शुद्धि की तरफ ध्यान देते हैं परन्तु जब तक भीतर लोभकषाय साफ नहीं होता है तब तक उनका जप नियम स्नान आदि सभी क्रियाएं व्यर्थ कहलाती हैं। कहा भी है कि—

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था,
सत्योदका शीलतटा दयोर्मि ।
तत्राभिषेक कुरु पाण्डुपुत्र,
न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥

अर्थात् हे पाण्डुपुत्र ! आत्मारूपी नदी संयम रूप पवित्र तीर्थ वाली है उसमें सत्य रूप जल भरा हुआ है उसका शील तट है और दया लहरें हैं। तुम उसी में स्नान करो। जल के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि नहीं हो सकती।

अतः धर्मनिष्ठा की प्राप्ति के लिए शरीर की बाह्य और आन्तरिक शुद्धि के साथ निरन्तर आत्मनिरीक्षण और सद्विचार की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

निर्लोभता ही मनुष्य को हमेशा सुख और शान्ति देने वाली है। पण्डपुर में एक बहुत गरीब आदमी रहता था। वह बड़ा निर्लोभी था। उसे सभी लोग रांका कह कर पुकारते थे। उसकी पत्नी का नाम था बांका। एक दिन नामदेव भक्त ने भगवान से कहा भगवान ! रांका और बांका आपके बहुत भक्त हैं। बेचारे रोज रोज मजूरी करके अपना पेट पालते हैं उनको क्यों नहीं आप कुछ देते हैं। भगवान ने कहा-नामदेव ! वे कुछ लेना नहीं चाहते हैं। वे तो मजूरी करके पेट

इतनी रात गये किसी को कैसे जगाऊँ ? तो स्त्री से भेंट कैसे हो। ऊपर की ओर देखा तो एक रस्सी लटकती दीखी। उसे पकड़ा और चढ़ गये। स्त्री ने देखा तो विस्मित रह गई। बोली—इतनी रात को ? लेकिन ऊपर आये कैसे ? तुलसीदास मुस्कराकर बोले—मुझसे क्या बनता है। तूने ही तो मेरे लिए रस्सी लटका रखी है। स्त्री को बड़ा आश्चर्य हुआ—मैंने तो रस्सी नहीं लटकाई। वह उठी और दीपक के प्रकाश में देखा—वहाँ रस्सी तो नहीं थी बल्कि एक भयानक साँप जरूर लटका हुआ है। स्त्री को समझते देर नहीं लगी। वह ताने भरे लहजे में बोली—

जितना प्रेम हराम से उतना हरि से होय।
चला जाय बैकुण्ठ में पला न पकड़े कोय॥

बात क्या थी तीर था जो तुलसीदास के हृदय में बिंध गया—यह सच कहती है। मैं जितना प्रेम मनुष्य की खाल इस स्त्री से करता हूँ, यदि मैंने उतना प्रेम भगवान् से किया होता तो मेरा उद्धार हो जाता। वे जैसे आये वैसे ही उल्टे पैरों वापस चल गये—घर नहीं वन को और उन्होंने भगवान की भक्ति में अपने आपको समर्पित कर दिया और एक दिन वे महात्मा बन गये।

हम शरीर के व्यामोह में फँस कर उसे शुद्ध करने का निरन्तर प्रयत्न करते हैं किन्तु वह पवित्र नहीं होता। उसके धोने पोंछने पर भी आत्मा फिर भी पवित्र नहीं हो पाती। आत्मा की शुद्धि शरीर की शुद्धि से नहीं होगी वह होगी अन्तरंग और बहिरंग संयम धारण करने से। वह होगी लोभ कषाय छोड़ने से।

एक व्यक्ति ने सोचा—कोयला काला है। उससे मेरे हाथ भी काले हो जाते हैं। चलो साबुन से धोकर इसे सफेद कर दूँ। उसने मनों साबुन लगाया महीनों परिश्रम किया किन्तु कोयला सफेद नहीं हुआ। वह बड़ा परेशान हो गया—क्या उपाय करूँ कि यह सफेद हो जाय।

एक विदेशी पुरुष ने देख लिया। बोला—अरे! कायदे का मालूम नहीं जगह पर पेशाब नहीं किया जाता। तुम्हें अगर पेशाब करना है तो कायदे को तो एक काम करो। इस जगह था। अपने आप समझ में आयेगा। उस व्यक्ति ने वैसा ही किया और उसे आश्चर्य हुआ यह देखकर कि उस पर कायदा भंग हो गया है।

सब बाह्य शुद्धि पर जोर देते हैं। मन शुद्धि पर जोर कम देते हैं। मानते हैं कि कोई कहते हैं जल से स्नान करने से शुद्धि हो जाती है। कोई गंगा यमुना गोदावरी में और कोई समुद्र तालाब या कुण्ड में स्नान से शुद्धि मानते हैं। किन्तु जल से शरीर की बाह्य शुद्धि हो जायगी उसकी मन शुद्धि जल से कम होगी। फिर समझे कि मन में बसे आत्मा जल से कैसे शुद्ध होगी। लोग पाप से पाप को धोना चाहते हैं। भाई! पाप तो धुलेगा पुण्य से और फिर तप की अग्नि से उसे जलाना पड़ेगा। तब कहीं आत्मा शुद्ध हो पायगा।

शहर में चारों ओर दुर्गन्ध फैलती है। घर में भी बदबू आती है। यह दुर्गन्ध कहीं से नहीं आई तुम्हारे शरीर से ही यह दुर्गन्ध निकलती है। तुम दूध घी मेवा खाकर दुर्गन्ध ही निकालते हो।

एक भक्त साधु के पास पहुँचा। बोला—मुझे वैराग्य हो गया है मुझे भी साधु बना लो। साधु बोले—वैराग्य कैसे हो गया तुझे। क्या औरत से झगड़ा हो गया है या खाना नहीं मिलता है? तुझे वैराग्य है तो संसार में सबसे बुरी वस्तु क्या है तुम ढूँढ कर लाओ। वह गया। उसने सब जगह देखा। उसे टट्टी से अधिक गन्दी वस्तु कोई नहीं दिखाई दी। उस पर मक्खियाँ भिनभिना रहीं थीं। उसमें से बदबू आ रही थी। बोला—यही वस्तु सबसे बुरी है। टट्टी बोली—नहीं मैं बुरी नहीं हूँ। बुरे तुम हो। दूध फल मेवा अन्न सब सुन्दर थे। किन्तु मनुष्य ने इनका उपयोग किया तभी ये वस्तुयें बुरी हो गई। वस्तुतः बुरा तो मनुष्य का शरीर है।

तायक्कुरा ने घरबार को दुःख का कारण समझ कर छोड़ दिया और जंगल में जाकर ॐ नमः सिद्धेभ्य कहकर दीक्षा ली। उन्होंने सोचा— मेरी आत्मा सिद्ध स्वरूप है। अशुद्ध हो गई है इसे शुद्ध करना है।

एक साधु के चार शिष्य थे। चातुर्मास निकट आ गया तो गुरु ने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाही। एक शिष्य से कहा—तुम सिंह की गुफा में चातुर्मास करो। दूसरे से कहा—सर्प की बांबी के ऊपर खड़े रहकर चातुर्मास करो। तीसरे से वहां करने को कहा जहां निरन्तर पानी गिरता है। चौथे को आदेश दिया—तुम उस वेश्या के यहां चातुर्मास करो जिससे संसार दशा में तुम्हें प्रेम था।

तीनों ने सोचा—यह चौथा तो बड़ा भाग्यवान है। पर वेश्या के चक्कर में पड़कर भ्रष्ट हो जायगा। हम तो शेर जैसे होंगे। अपना काम निकाल लेंगे। चौथा नगर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी वेश्या के घर पहुंचा और बाहर चबूतरे पर बैठ गया। वेश्या ने उसे अन्दर बुलाया। वेश्या उसे कुछ दिन पश्चात् आया देखकर बड़ी प्रसन्न थी। साधु ने वेश्या से अपने यहां चातुर्मास बिताने की आज्ञा मांगी। वेश्या ने बड़ी प्रसन्नता से उन्हें आज्ञा दी और उनके लिए पलंग कोमल बिस्तर और सभी आवश्यक साधन जुटा दिये। किन्तु साधु अपनी चटाई पर जमीन पर बैठे। वेश्या ने सेवा की प्रार्थना की। किन्तु साधु ने अस्वीकार कर दिया। वह काम याचना करती व धर्म का उपदेश सुनाते। परिणाम यह हुआ कि चातुर्मास की समाप्ति पर वेश्या ने भी ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया।

दूसरे चातुर्मास में गुरु ने दूसरे शिष्य को उसी वेश्या के घर चातुर्मास बिताने भेज दिया। वेश्या ने भांप लिया—कितने पानी में है यह। उसने बड़ी अभ्यर्थना की और पलंग बिस्तर दिये। साधु ने वे स्वीकार कर लिये। वह वेश्या का भोजन भी करने लगा। अब साधु वेश्या के चारों ओर मंडराने लगा। एक दिन उसने रतिदान की प्रार्थना की।

वे बोले—मैं रत्नकंबल हूँ। अगर राजा को रत्नकंबल लाता तो मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर देता। साधु राजा के पास में गया और रत्नकंबल ले आया। वेश्या ने उस कम्बल को नाली में डाल दिया। उस साधु ने कहा—अरे! यह तो बहुमूल्य रत्नकंबल है। इसे तुम व्यर्थ नष्ट करती हो। वेश्या बोली—रत्नकंबल तो और भी मिल जायेंगे। किन्तु यह मानव जीवन बड़ा अमूल्य है। यह यदि व्यर्थ गंवा दिया तो पुन दुबारा नहीं मिलेगा। फिर वह लज्जित होकर बोला—तुम इस नीच शरीर में से क्या चाहते हो? वास्तव में तुमने यहाँ आकर व्यर्थ गंवाए। अगर इतने दिन तुम भगवान का ध्यान करते तो मोक्ष मिल जाता। इस प्रकार उपदेश देकर उसे संयम मार्ग में लगा दिया।

वस्तुतः संयम के द्वारा आत्मा में पवित्रता आती है। संयम का आचरण करने वाले साधु आत्मा के स्वरूप को समझते हैं। अतः उनकी आत्मा निर्मल बन जाती है। वे शरीर की शुचिता की ओर नहीं आत्मा की शुचिता की ओर ध्यान देते हैं। वे न स्नान करते हैं न दन्तधावन करते हैं। शरीर भी स्वच्छ नहीं रहता। किन्तु उनकी आत्मा पवित्र स्वच्छ और निर्मल हो जाती है। वे शरीर का उपयोग आत्म-शुद्धि के निमित्त करते हैं। अतः उनकी वासना उनकी दासी बन जाती है। मन पर पूर्ण नियंत्रण होता है। [illegible] ने [illegible] के सब प्रयत्नों को सभा में जब शृंगारपूर्ण वर्णन किया तो अच्छे व्यक्तियों के मन विचलित हो गए। किन्तु आचार्य निर्विकार रहे। क्योंकि इनके अन्तर का विकार संयम के द्वारा दूर हो चुका था। शील धर्म उनके अणु अणु में रम गया था।

हममें और उनमें बड़ा अन्तर है। हमारी दृष्टि बाह्य पर शरीर पर रहती है किन्तु उनकी दृष्टि अन्तर-आत्मा पर रहती है। हम शरीर के रूप रंग को सुन्दरता मानते हैं और वे मुनि आत्मा की शुचिता को सुन्दरता समझते हैं। हम शरीर के शृंगार में दिन रात लगे रहते हैं

और व आत्मा की सज्जा के लिए अपना सारा समय लगाते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारी दृष्टि केवल शरीर के रूप सौन्दर्य पर अटकी रह जाती है वह आत्मा के रूप तक नहीं पहुँच पाती। जबकि मुनियों की दृष्टि में शरीर अशुचि का आगार है। वे इस अपावन आगार से भी रत्नत्रय की प्राप्ति कर अधिक तेजस्वी रखना चाहते हैं। जिनकी आत्मा शुद्ध निर्मल बन जाती है उनका अपावन कहलाने वाला शरीर भी पावन और पूज्य बन जाता है।

ज्ञानी लोग इस शरीर के द्वारा आत्म साधना करके मोक्ष पद की प्राप्ति करते हैं परन्तु अज्ञानी लोग शरीर का सार न समझ करके इस शरीर के द्वारा अनेक प्रकार के पाप करके अनन्त निकृष्ट गतियों में भ्रमण करते हैं। जन्म मरण भी इस शरीर के साथ ही है। इस शरीर के लिए ही मानव को अनेक दुःख उठाने पड़ते हैं। मानव शरीर की क्षणिकता अशुचिता मालूम होने पर भी जो अनादि काल से इस पर मोहित होते आये हैं वे वृद्ध अवस्था होने पर भी इस शरीर के मोह को नहीं छोड़ते हैं। कहा भी है कि—

गात्र संकुचित गतिर्विगलिता, दन्ताश्च नाश गता।
दृष्टिर्भ्रश्यति रूपमेव ह्रसते, वक्त्र च लालायते॥
वाक्य नैव करोति बान्धवजन पत्नी न शुश्रूयते।
धिक् कष्ट जरयाभिभूतपुरुष, पुत्रोऽप्यवज्ञायते॥

वृद्धावस्था में शरीर संकुचित हो जाता है। गति भी शिथिल हो जाती है अर्थात् हाथ पैर हिलने लगते हैं। ठीक प्रकार चल फिर भी नहीं सकता है दांत गिरने लगते हैं आँखों से दिखाई नहीं देता रोग प्रतिदिन बढ़ता जाता है मुख से लार गिरने लगती है, बन्धुजन तिरस्कार करते हैं स्त्री सेवा नहीं करती है। इसलिए आचार्य बतला रहे हैं कि हे जीव! तू इस अवस्था को छोड़कर पर भव में शुद्ध गति प्राप्ति की इच्छा नहीं

रता है यह कितने आश्चर्य की बात है। इसलिए भव्यजीवों को चाहिए कि इन्द्रियों की शक्ति जब तक शिथिल न हो, शरीर में जब तक बल है, हाथ पांव में बल है, कान में सुनने की शक्ति है, आंखों में देखने की शक्ति है तब तक इस जीव को आत्म-साधन करना ही चाहिए। कहा गया है—

यावत स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावज्जरा दूरतो।
यावच्चेन्द्रियशक्तिर प्रतिहता, यावत क्षयो नायुष ॥
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा, कार्य प्रयत्नो महान।
प्रोद्दीप्ते भवने हि कूपखननं, प्रत्युद्यम कीदृश ॥

जब तक यह शरीर रूपी घर मौजूद है, जब तक इन्द्रिय शक्ति नष्ट नहीं हुई है, जब तक आयु पूर्ण नहीं हुई है तब तक विद्वान् लोगों को अपने कल्याण के लिए उत्तम प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु मूर्ख लोग इस अपवित्र शरीर को ही अपना सुख मानकर रात दिन उसके पीछे लगे रहते हैं। आजकल दुनिया में शरीर को सुन्दर बनाने के लिए अनेक प्रकार के पाउडर साबुन तेल निकले हैं। बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनकर इस अपवित्र शरीर को हम पवित्र बनाना चाहते हैं। परन्तु आज तक अपवित्र वस्तु पवित्र नहीं हो सकी है। इस शरीर के अन्दर पड़ा हुआ सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र रत्नत्रय ही शुद्ध है, निर्विकार है, अखण्ड है, अविनाशी है, हमेशा सुख और शान्ति को देने वाला है ऐसा समझ करके बुद्धिमान लोगों को पवित्र आत्मा का ही ध्यान करके इस अशुचिमय संसार और शरीर भोग से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए। और आत्मा को मलिन करने वाले भीतर के लोभ कषाय को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

उत्तम संयम धर्म

संयम दो प्रकार का है— एक इन्द्रिय संयम दूसरा प्राणी संयम। पांच स्थावर और त्रस इनकी रक्षा करना इसको प्राणी संयम कहते हैं। पांच इन्द्रियों को अपने काबू में रखना इसको इन्द्रिय संयम कहते हैं। बिना संयम के मनुष्य शोभा को नहीं पाता है। संयम का अर्थ दमन है। विषय कषाय की लालसा को कम करना आत्मा को कषाय मुक्त बनाने वाले पंचेन्द्रिय विषय सम्बन्धी पदार्थों का त्याग करना। संयमी जीव हमेशा सुख से जीवन बिताता है। जब तक मनुष्य के अन्दर संयम नहीं होगा तब तक वह जीव अपनी रक्षा नहीं कर सकता है। इसलिए आचार्य ने प्रत्येक मानव को संयम में रहना अत्यन्त आवश्यक बताया है। असंयमी कभी भी अपने आत्मा को सुख और शान्तिमय नहीं बना सकता है। जब यह जीव संयमी बनता है तब दूसरे को भी संयम में लाकर सुख का लाभ पहुंचाता है। इसलिए प्रत्येक मानव को संयम में रहना अत्यन्त आवश्यक है। आजकल के युग में लोगों का चारित्र के प्रति श्रद्धान कम हो गया है। बिना चारित्र के मनुष्य पशु से भी निम्न माना जाता है। कहा भी है कि —

धन गया तो कुछ नहीं खोया।
स्वास्थ्य गया तो कुछ खोया।
चारित्र गया तो सब कुछ खोया।

इस कहावत के अनुसार जब तक मनुष्य के अन्दर चारित्र नहीं है वह मनुष्य एक कौड़ी का भी नहीं है। पशु पक्षी एवं मनुष्य को सदाचार ही उन्नत शिखर पर पहुंचाने के लिए आता है। चारित्र को प्राप्त करने के लिए ही यह परम पवित्र पद है। यह बात हम सब जानते हैं कि मनुष्य अपने सद्चारित्र से अपनी उन्नति करता है और दुश्चारित्र से

होता रहेगा। लेकिन इसके साथ साथ यह भी जान लेना चाहिए कि सद्चरित्र से केवल हम ही ऊंचे नहीं चढ़ते हैं बल्कि साथ वालों को भी ऊँचे चढ़ाते हैं और दुश्चरित्र से हमारा ही पतन नहीं होता है परन्तु हमारे साथ साथ दूसरों का भी पतन होता है। सद्चरित्र अपने साथ सभी दूसरे को भी ऊपर उठाता है वहाँ दुश्चरित्र अपने साथ दूसरे को भी नीचे गिराता है। जब कई रोग संक्रामक होते हैं तब चरित्र भी संक्रामक होता है। जैसे कि मानव भी रोगी वातावरण में आकर रोगी बन जाता है उसी प्रकार रोगी मानव भी स्वास्थ्यप्रद वातावरण में आकर स्वस्थ बन जाता है। इसी प्रकार सद्चरित्र और दुश्चरित्र भी होता है।

अगर कोई मनुष्य दुश्चरित्र हो या वह चाय पीता हो या बीड़ी सिगरेट पीता हो तो दूसरा मानव भी उसको देखकर वही काम करने की इच्छा करेगा। लेकिन यदि कोई मनुष्य अपने घर में चाय नहीं पीता हो सिगरेट नहीं पीता हो तो उसके साथ उसके घर वाले भी उन व्यसनों से दूर रह सकेंगे। जैसे दुश्चरित्र मानव अन्य का भी पतन करता है। इसी तरह सद्चरित्रवान पुरुष अपने साथ दूसरों का भी भला करता है। दुनिया में सबसे ऊँचा माना गया है कि हम अपना जीवन आदर्श बनावें और उसकी छाप दूसरे पर भी डालें। अधिक नहीं तो कम से कम इतना तो करना चाहिए जिससे हम सद्चरित्रवान बनें। अमेरिका में जब गुलामी प्रथा चलती थी तब वहाँ के प्रेसीडेन्ट अब्राहम लिंकन ने इस प्रथा को दूर करने के लिए कई प्रयत्न किये। इसके लिए एक संघ का स्थापन किया और लोगों से कहा कि इस संघ में प्रवेश टी० बी० के बीमारों के सदृश स्थान दूंगा पर चरित्रहीन मानव के लिए मेरे संघ में कोई भी स्थान नहीं मिलेगा। जैसे एक सड़ा हुआ पान सारी टोकरी के पानों को बिगाड़ देता है उसी तरह एक चरित्रहीन मानव भी सारे समाज को खराब कर सकता है। आप कहेंगे कि बिचारे अकेले मानव की क्या हस्ती है जो सारी दुनिया को खराब कर सके। लेकिन अगर आप इस पर नैतिक गौर करेंगे-तो

हमारे यह बात आसानी से समझ सकेंगे। हम यह प्रत्यक्ष देखते हैं कि किसी तालाब में अगर कोई कपड़ा डाला जाय तो इसका असर सारे तालाब में हो जाता है। इसी तरह मनुष्य के अशुभ परमाणु भी धीरे धीरे सारे विश्व में फैल जाते हैं इसलिए चारित्रहीन मानव केवल अपनी ही हानि नहीं करता बल्कि अपने साथ साथ सारे संसार की हानि करता है। भले ही कोई मनुष्य एकान्त में बैठा हुआ तप करे। पर उसके शुभ परमाणु सारी दुनिया के परमाणुओं में मिलकर कल्याण कर सकते हैं। ऐसी अजीब शक्ति इन परमाणुओं में रहती है। अणु एक मिनट में चौदह राजू लोक में फैल जाता है यह हमारे जैन शास्त्रों का स्पष्ट प्रमाण है। अभी भी क्या आप लोग परमाणुओं की शक्ति में सन्देह रखते हैं। जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है वह उतनी ही बलवान होती है। आज विश्व का नाश करने के लिये अणुबम बना है। अणु कितना सूक्ष्म होता है। अतः यह एक प्रमाणित सत्य है कि सूक्ष्म वस्तु ज्यादा बलवान होती है। आप जानते भी हैं कि कांच के एक टुकड़े से हीरे के एक छोटे से कण में ज्यादा प्रकाश होता है क्योंकि वह उससे बहुत छोटा होता है। लेकिन विचार के परमाणु तो इनसे भी सूक्ष्म होते हैं जिन्हें हम अपनी आंखों से देख नहीं सकते हैं। ये तो इतने बलवान होते हैं कि इनकी शक्ति का कोई माप भी नहीं हो सकता है। जब आप धर्म स्थान अर्थात् मन्दिर में जाते हैं तो सुन्दर सुन्दर भावों में मग्न हो जाते हैं। जब मन्दिर से बाहर निकलकर आप किसी सिनेमा हाल में जाते हैं तो आपके विचार वहां के वातावरण के अनुसार परिवर्तित हो जाते हैं और आप पर विलासी भावनाओं का असर छा जाता है। इसका कारण क्या है? यही कि आपके मन्दिरों में महापुरुषों के सद्विचारों के परमाणु फैले हुए हैं। अतः वे लिपट जाते हैं और आपको सद्विचारों में खींच कर ले जाते हैं। लेकिन सिनेमा घरों में तो विलास का ही वातावरण होता है। अतः वहां जाने पर दुश्चरित्रता के परमाणु आपको लिपटेंगे और आपको बुरे मार्ग पर घसीटेंगे।

इस तरह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि सच्चरित्र और सच्चरित्रवान और पुरुष व स्त्री मनुष्य को निरन्तर चाहते हैं। वे अपना भी हिताहित करते हैं पर साथ साथ दूसरों का भी हिताहित करते हैं। इसलिए आज सच्चरित्र बनाने के लिए संयम का पालना अत्यन्त आवश्यक है। आज संसार जीवन को नियम उन्नत बनाने के लिए महान पुरुषों का साथ। जीवन हमारे सामने है। सुदर्शन सेठ के जीवन का इतिहास पढ़ने से पता चलता है कि उनका सदाचारित्र पालन हुआ व उनका प्रसन्न मन का जीवन भी पावन हृदय से उतारो जम्बूस्वामी तब आत्म ज्ञान और वैराग्य था। उनके घर में चोर प्रभव चोरी के विचार से आया। उसने जम्बूस्वामी का उस विशाल भवन और धन का परित्याग करने की भावना को देखा, और तब वह अपने मन में चिन्तन करने लगा —

मां धिक्—मुझे धिक्कार है।
अहं धनमाहर्तु मत्र प्रविष्टम् ॥

मैं धन लेने अर्थात् धन चुराने के लिए यहाँ आया था और यह महापुरुष प्राप्त सम्पत्ति होते हुए भी इसका त्याग कर रहा है। तब जम्बूस्वामी के साथ प्रभव चोर ने भी दीक्षा ले ली।

यह सभी सदाचारित्र साधु का ही प्रभाव है।

हिन्दुओं में वाल्मीकि रामायण संस्कृत का एक धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है। लेकिन उसको बनाने वाला पहले लुटेरा ही था जो लूट मार कर अपने परिवार का पालन करता था और जंगल में रहता था। भाग्य से उसको किसी सच्चे साधु का सम्पर्क मिल गया। और उस साधु ने उस लुटेरे को एक शब्द बताया—राम। इस बात को लेकर ही वह लुटेरा महर्षि हो गया। और रामायण जैसे महान ग्रन्थ की रचना कर सका। इसलिए कहने का आशय यही है कि सदाचारित्रवान दूसरे को भी

पड़ता है। इसलिए आज इस युग मे प्रत्येक मानव को संयम की जरूरत है। बिना संयम के मनुष्य की उन्नति नहीं हो सकती है। हमारी सन्तान संयम के संस्कार न होने के कारण आज चारित्र में उन्नति शिखर पर पहुँच नहीं सकती हैं। आजकल के छोटे २ बच्चों पर गन्दे संस्कार होने के कारण आज हमारी सन्तान निर्बल बनती जा रही है और उनमें अनेक प्रकार के दुर्व्यसन कुआचरण गन्दे संस्कार पल रहे हैं। शासन में भी गन्दगी है। खान पान में भी गन्दगी है। दुनिया उसके पीछे पागल हो रही है। आचरण के नाम से चिढ़ जाती है। आजकल के लोग चारित्र को या संयम को पसन्द नहीं करते। सदाचार वृत्ति को मिटाना चाहते हैं। इसीलिए आज पापाचार का बोलबाला होता जा रहा है। दिन दिन मनुष्य के अन्दर राक्षस वृत्ति बढ़ती जा रही है। खानपान की शुद्धता अशुद्धता का विचार नहीं है। आजकल मानव मांसाहारी होता जा रहा है। शाकाहारी बहुत कम नजर में आते हैं। पुराने धर्मवाले धर्म के पीछे दौड़ धूप और अपने प्राण के समान उसकी रक्षा करने के लिए कोशिश करते हैं परन्तु हीनसंयम वाले जब उन लोगों की संगति में मिल जाते हैं उनको भी उसी प्रकार होकर रहना पड़ता है। पहले जमाने में राजा स्वयं चारित्रवान होते थे। अतः प्रजा भी राजा के मार्ग पर चलती थी। आजकल धर्म की परम्परा परिपाटी मलिन होने के कारण मनुष्य के अन्दर धार्मिक भावना नष्ट हो गई है। यह पवित्र आर्य भूमि कहलाती थी। इस आर्य भूमि में उत्पन्न होने वाले आर्य कहलाते थे उनके आचार विचार और संस्कार भी आर्य होते थे। आर्य भूमि में उत्पन्न होने वाले महापुरुष हमेशा मोक्ष मार्ग की परिपाटी सुरक्षित रखने के लिए धर्म अर्थ काम ये तीन पुरुषार्थ न्याय पूर्वक सेवन करते थे। इन तीन पुरुषार्थों के द्वारा मोक्ष पुरुषार्थ का साधन कर लेते थे। इसी पृथ्वी पर भगवान ऋषभदेव से लेकर महावीर तक चौबीस पुरुषों ने जन्म लेकर अपने जीवन को हमेशा के लिए सुख मय बना लिया है। संयम तथा सदाचार का मार्ग इसी भूमि में निर्माण

हुआ है। तब हमारा भी कर्त्तव्य है कि इस पवित्र भूमि में जन्म लेकर हम अपनी आत्मा को पवित्र बनावें और उन्हीं महापुरुषों का अनुकरण करके उच्च चारित्र के शिखर पर पहुँचने का प्रयत्न करें और अपनी सन्तान को कुसंस्कारों से बचावें। जब तक हम अपनी सन्तान में बलात्कारपूर्वक सुसंस्कार डालने का प्रयास नहीं करेंगे तब तक भारतवर्ष का उत्कर्ष नहीं हो सकता। और राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती।

इसलिए प्रत्येक मानव को स्व और पर का कल्याण करता है अपनी आत्मा को उन्नतिशील बनाना है तो सद्चारित्र की तरफ झुकने का प्रयत्न करना चाहिए। संयम ही मनुष्य के जीवन को सुधारने वाला है संयम ही आत्मा का स्वभाव है। इसलिए उत्तम संयम उत्तम चारित्र की भावना रख करके हीनसंयम और पाप-बुद्धि को दूर कर मनुष्य को अपना मानव जीवन सफल करना चाहिए।



उत्तम तप धर्म

संयम पालन के द्वारा ही तप हो सकता है। संयम के बिना तप नहीं हो सकता। यदि हवा चलती रहे तो हवा से तरंगें उठती हैं हवा शांत हो तो तरंगें भी शांत रहती हैं। इसी प्रकार मन की वासनायें शांत रहें तो मन की तरंगें भी शांत रहती हैं। यदि मन में वासना हो तो मन में नाना प्रकार की तरंगें उठा करती हैं। मन की ये तरंगें तप के द्वारा शान्त रहती हैं। हमें पुण्योदय से मनुष्य योनि उत्तम कुल उत्तम धर्म सभी साधन मिल गये। ये सब पूर्व जन्म में किए हुए तप का ही फल है।

रूपनन्दा नाम की एक धार्मिक महिला थी। वह सदा पंचमी के व्रत किया करती थी। पाँच पाँच दिन तक उपवास करती थी। उसके फलस्वरूप वह बहुत सम्पन्न और सम्भ्रान्त कुल में पैदा हुई थी। उसे किसी प्रकार का कोई दुःख न था और वह रोना भी नहीं जानती थी।

जीवन में वह कभी रोई न थी। इसलिए यदि कभी किसी को रोते हुए देख लेती थी तो वह समझती थी कि यह कोई गाना गा रहा है। एक दिन वह मंदिर जा रही थी मार्ग में एक स्त्री जोर जोर से रो रही थी। रूपलक्ष्मी को वह रोना बड़ा अच्छा लगा। उसने समझा कि यह भी कोई सुन्दर गाना है अतः वह सुनने के लिए उस स्त्री के पास गई और उसके पास जाकर उसके गान की बड़ी प्रशंसा की। स्त्री इससे चिढ़ गई। जब रूपलक्ष्मी अपने घर चली गई तब उस स्त्री ने एक घड़े में एक भयंकर काला सांप रखा और एक मनुष्य के हाथ उसे रूपलक्ष्मी के पास भेज दिया और कहला दिया कि इसमें एक बहुत सुन्दर रत्न हार है इसे अपने पुत्र के हाथ से निकलवा लेना। रूपलक्ष्मी ने अपने पुत्र को बुलवाया और उससे कहा—बेटा तेरी मौसी ने तेरे लिए हार भेजा है। तू नौ बार नवकार मंत्र पढ़कर इसे निकाल ले। बच्चे ने उसके कथनानुसार नवकार मंत्र पढ़ कर हाथ डाला और उसमें से हार निकाल लिया। देखा तो वह वस्तुतः बहुत ही बहुमूल्य रत्नहार था। रूपलक्ष्मी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतना कीमती हार क्यों भेजा है। थोड़ी देर बाद वह स्त्री आई और उसने यह समझा कि बच्चा मर गया होगा और रूपलक्ष्मी जो मुझे चिढ़ाने आई थी वह रो रही होगी। उसने आकर पूछा—बच्चे का क्या हाल है। रूपलक्ष्मी ने अपनी सहज प्रसन्न मुद्रा से उत्तर दिया—बहिन! तुमने नाहक इतना कीमती हार क्यों भेजा है। बच्चा पहनता थोड़े ही है। यहीं कहीं पड़े हुए हैं। स्त्री को बड़ा आश्चर्य हुआ मैंने तो इसमें काला सांप भेजा था वह रत्नहार कैसे बन गया। उस स्त्री ने कहा—देखूं तो वह रत्नहार ऐसा कोई कीमती तो नहीं था। उसने ज्योंही रत्नहार लिया वह सांप बन गया और उसे डस लिया जिससे तत्काल उसकी मृत्यु हो गई। वास्तव में तप द्वारा कर्मों की निर्जरा होती है और संसार में सभी प्रकार के भोगों की सामग्री प्राप्त होती है।

गृहस्थाश्रम में जो पंचेन्द्रियों के निग्रह का अभ्यास करता है वह ही साधु जीवन में तप कर सकता है। शरीर का मोह छोड़े बिना और इन्द्रियों के विषयों का नियमन किये बिना तप नहीं हो सकता। आत्मा अनादिकाल से पर को अपना समझ कर मिथ्या भावनाओं में फंसा चला आ रहा है। मिथ्या भावनाओं को तप द्वारा ही सम्यक् किया जाता है। सम्यक् तप द्वारा पर से रुचि हटकर आत्मरुचि जाग्रत हो जाती है और वह पर को मिथ्या समझ कर केवल आत्मिक गुणों में रमण करने लगता है।

आजकल लोगों की प्रवृत्ति बकरों की सी हो रही है। दिन रात मुंह चलता रहता है। घर में रहते हैं तो वहां खाते रहते हैं। दुकान पर बैठते हैं तो वहां खाते रहते हैं। कोई चाटवाला आया तो चुना लिया। बर्फ वाला आया तो उसमें बर्फ ले ली। भेल पूरी बेचनेवाला आया तो बैठ गये उसके सामने। न भक्ष्याभक्ष्य का विवेक है न स्वास्थ्य का ध्यान है। केवल रसना इन्द्रिय के आधीन होकर अपनी इच्छानुसार वस्तुएँ खाते हैं। यह नहीं देखते कि बनाने वाला कौन है कैसे पदार्थ हैं। सड़े गले का भी नहीं है। परिणाम यह होता है कि स्वास्थ्य विरोधी मिर्च खटाई और मसालों की भरमार से स्वास्थ्य खराब हो जाता है। उससे स्वयं को कष्ट होता है। साथ ही डाक्टरों के यहां नित्य हाजिरी देनी पड़ती है। घर में जितना खर्च होता है उतना ही डाक्टर का बिल बैठ जाता है। जिन्दगी घिसट घिसट कर बीमारी में बिताते हैं। किन्तु फिर भी अपनी जिह्वा लोलुपता नहीं छोड़ सकते। इन्द्रिय विषयों की आधीनता यही तो है।

इस इन्द्रिय विषयाधीनता का एक दुष्परिणाम और होता है। स्वास्थ्य विरोधी पदार्थ खाने से जब स्वास्थ्य पतला हो जाता है तो मन में स्थिरता नहीं रहती चंचलता बढ़ जाती है। मन इधर उधर भटकता रहता है। वह विषय वासनाओं की ओर अधिक उन्मुख हो जाता है।

उसकी चर्चायें विचार व्यवहार उसी प्रकार का हो जाता है। उसका मनोबल समाप्त हो जाता है सकल्प शक्ति क्षीण हो जाता है। वह किसी महान् काय का सकल्प नही कर सकता। संकल्प कर ले तो टिकता नही।

एक बन्दर ने किसी मुनि का उपदेश सुना और सुनकर उसने उपवास करने का निश्चय कर लिया। उसने उपवास तो किया किन्तु उसका मन बड़ा चचल था। दोपहर तक तो वह किसी प्रकार गाड़ी खींच ले गया किन्तु फिर भूख और प्यास असह्य होने लगी। वह फल वाले एक वृक्ष पर गया और एक फल तोड़कर हाथ मे ले लिया। वह सोचने लगा—अरे तो उपवास है। म खाऊँगा थोड़े ही। लेकिन हाथ मे इसे लेने मे क्या हज है। किन्तु उसका मन तो चचल था। थोड़ी देर बाद वह फल को मुह के पास ले गया फिर भी वह सोचने लगा—म खा थोड़े ही रहा हू। लेकिन मुँह के पास इसे ले आने मे नुकसान क्या है? थोड़ी देर बाद उसका मन नही माना और उसने वह फल मुँह मे रख लिया। तब भी वह सोचता रहा—मुह म ही तो रखा है। जब वह फल पेट मे चला गया तो सोचने लगा कि मै क्या करू वह पेट मे चला गया और जब एक फल पेट मे जा सकता है तो दूसरा फल क्या नही जा सकता।

यह एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। इसका आशय यह है कि एक बार मन को नियन्त्रण मे न रखा उसमे कमजोरी आई कि व्रत भग हुआ। फिर व्यक्ति माग निकालता है जिससे वह व्रत का आडम्बर कर सके। अपने मन को सात्वना दे सके कि मै व्रत पाल रहा हू और कोई माग निकालकर अपनी इन्द्रिय वासनाओं की पुष्टि भी कर सके।

आजकल बहुत सी माता बहनें अष्टमी चतुर्दशी को हरी नहीं खाती। किन्तु उनकी हरी की वासना नही जाती। हरी का तो त्याग करती हैं किन्तु हरी की वासना का त्याग नही करती। अत व उसके लिए रास्ता

निराली हैं। वे हरी साग सब्जी नहीं खातीं किन्तु उन्हें सुखाकर और उनका साग बनाकर हरे साग का स्वाद लेकर परितृप्ति का अनुभव करता हैं।

वस्तुतः आत्मा का अहित करने वाला दो बातें हैं—विषय और कषाय। कहा भी है—आतम के अहित विषय कषाय। हमारे त्याग धर्म के मूल में इन विषय कषायों के त्याग की ही दृष्टि प्रधान है। जो लोग जैन धर्म के त्याग मार्ग का उपहास करते हैं—क्या रखा त्याग में दो चार चीजें छोड़ने से कहीं धर्म नहीं होता—ऐसे लोग तथा जो त्याग करते हैं वस्तुओं का लेकिन फिर भी उन वस्तुओं की गृद्धता और वासना बनी रहती है उनके मन में ऐसे लोग दोनों ही जैन धर्म के त्याग मार्ग का उद्देश्य नहीं समझते। त्याग मार्ग में वस्तुओं के त्याग का भी अपना एक महत्व है लेकिन उस त्याग की शोभा तभी है जब उस वस्तु का राग भी त्याग किया जाय उसकी इच्छा भी छोड़ दी जाय।

वारिषेण राजा श्रेणिक का पुत्र था। सभी राजसी वैभव और आराम के साधन सुलभ थे उसे। किन्तु मन में विराग था प्रारम्भ से ही। वह मुनि-दीक्षा लेकर जंगल में चला गया। एक बार वे विहार करते हुए राजगृही के बाहर आकर ठहरे और नगर में चर्या के लिए आये। उनके बाल सखा सोमदत्त ने उन्हें पड़गाया। जब वारिषेण चर्या के पश्चात् जाने लगे तो सोम भी उन्हें शिष्टाचारवश छोड़ने उनके साथ चल दिया नगर के बाहर निकल गये किन्तु मुनिराज ने उससे लौटने को नहीं कहा। बेचारा सोम क्या करे। कई बार संकेत से कहा भी, किन्तु मुनिराज मौन धारण किये हुए थे और बिना कहे सोम वापस कैसे जाय। जंगल में पहुँचे। वारिषेण ने उसे समझाया और सोम भी मुनि हो गया। वह मुनि तो हो गया किन्तु उसका मन स्त्री में ही अटका रहा। वह एक क्षण को भी अपनी स्त्री एकाक्षी नागिला को मन से न निकाल सका। दिन बीतने गये और नागिला उसके मन प्राण पर

आसन जमा कर बैठ गई। स्वप्न में जागरण में सब बात होकर उसे कामिनी की याद सताती रही। वारिषेण ने देखा। वे समझ गये—सोम के मन में स्त्री का मोह अभी मिटा न पाया। एक दिन वे सोम को लेकर राजमहलों में पहुँचे। वारिषेण की माता चेलना को विश्वास था अपने पुत्र की दृढ़ता पर। फिर भी उसने परीक्षा लेना चाहा। उसने एक स्वर्णासन बिछवाया और दूसरा काष्ठासन। सोम ने दोनों आसन देखे और बड़ी लालसा के साथ स्वर्ण आसन पर बैठ गया। वारिषेण निरीह भाव से काठ के आसन पर बैठे। तब वारिषेण अपनी माता को सम्बोधित करके बोले—मेरी सभी स्त्रियों को शृंगार कराकर तुम यहाँ ले आओ। चेलना एक बार तो वारिषेण के इस आदेश से विस्मित हुई। किन्तु उसने सभी बहुओं का शृंगार-सज्जा करके आने के लिए कह दिया। बत्तीस बहुएं बहुमूल्य वस्त्राभरण पहन कर आईं तो उनकी सौम्य छटा से सारा कक्ष दैदीप्यमान हो गया। ऐसा भ्रम होता था मानो ये सुरलोक की देवांगनाएं हों या नाग-कन्यायें हों या विद्याधरियां हों। सोम सहसा अभिभूत इस रूपराशि को ठगा सा देखता रह गया। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं आया कि मैं मर्त्यलोक में हूं। तभी उसे वारिषेण की गुरु गम्भीर गिरा सुनाई पड़ी—सोम! देख इस राज्य का मैं भावी सम्राट् था। मेरे पास आनन्द के सभी साधन मौजूद थे। ये देवांगनाओं जैसी बत्तीस स्त्रियाँ थीं। किन्तु मैंने इनका राज्य का सबका आत्म कल्याण के लिए त्याग कर दिया। किन्तु तू घर बार छोड़कर भी मन से अपनी कामिनी का त्याग नहीं कर सका और तूने जीवन के ये बहुमूल्य दिन व्यर्थ गवां दिये। वस्तुओं का त्याग नहीं होता वस्तुओं के राग का मोह का आसक्ति का त्याग वास्तव में त्याग कहलाता है। सोम की समझ में यह तथ्य आ गया, उसकी आँखें खुल गईं और तत्काल उसने वारिषेण को नमस्कार करके मोह का त्याग करने का संकल्प कर लिया।

कहने का प्रयोजन यह है कि त्याग भावना पर शक्ति का किया जाता है। पदार्थ तो हमसे पृथक हैं ही। उनका छोडना छोड़ना क्या? किन्तु पदार्थों को लेकर हमारे मन में उनके प्रति जो आसक्ति है इच्छा और लालसा है और जिसे हम अपना मान कर अपने मन में सजो रहे हैं, उसका त्याग ही वस्तुतः त्याग है। वही त्याग तप कहलाता है। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा है—

इच्छा निरोधस्तपः

अर्थात् इच्छाओं का दमन तप है। जो प्राप्त है इच्छा केवल उसकी ही नहीं होती। इच्छा उसकी भी होती है जो अप्राप्त है जो हमारे पास नहीं है। हमारे मन में इच्छायें आकांक्षायें दिन रात उमड़ती घुमड़ती रहती हैं। एक इच्छा पूरी हो जाय तो उसके स्थान पर चार नई इच्छायें आकर खड़ी हो जाती हैं। पदार्थों की संसार में सीमा है किन्तु इच्छाओं की तो कोई सीमा ही नहीं है। कुछ इच्छायें राग को लेकर होती हैं, कुछ द्वेष को लेकर होती हैं। कुछ इच्छायें कषाय के आधार से होती हैं और कुछ इन्द्रिय विषयों के कारण होती हैं। इस प्रकार इच्छाओं के नाना रूप हैं नाना भेद हैं। उन इच्छाओं को दबाने का नियन्त्रित करने का प्रयत्न करना चाहिये। इच्छाओं का यह नियमन ही तप कहलाता है।

तप की पूर्ण मर्यादा तो साधु-जीवन में ही संभव होती है। वहां तो सर्वत्यागी जीवन होता है। इसलिये मन की हर राग-द्वेष की वासना पर पूर्ण नियमन रहता है। किन्तु गृहस्थ जीवन में भी तप का अभ्यास किया जाता है। जिसने गृहस्थ जीवन में तप का अभ्यास नहीं किया, वह साधु जीवन में प्रायः सफल नहीं हो पाता। अतः गृहस्थ अवस्था से ही तप का अभ्यास करना उचित है।

तप दो प्रकार का है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप शरीर के द्वारा किया जाता है और आभ्यन्तर तप अपने अन्तर में आत्मालोचन

द्वारा किया जाता है। दोनों के हो छह छह भेद है। बाह्य तप के छह भेद ये है—अनशन ऊनोदर भिक्षाचरी रसपरित्याग विविक्तशय्यासन और कायक्लेश। इसी प्रकार आभ्यन्तर तप के भी छह भेद हैं—प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान।

चारो प्रकार के आहार का त्याग करना यह अनशन कहलाता है इस ही उपवास कहते है। उपवास का अर्थ है आत्मा के निकट वास करना। जिनकी आत्मरुचि हो गई है और बाह्य से दृष्टि हट गई है वे ही सही मायनो मे उपवास कर सकते है। वास्तव मे अनशन उपवास का पूरक है। उपवास के बिना अनशन नही होता। जिनकी दृष्टि बाह्य पदार्थों की ओर है उनका अनशन केवल लंघन कहलाता है। भूखे रहने को शास्त्रकारो ने अनशन नही कहा बल्कि जिनकी अन्तर्दृष्टि निर्मल है और जो यह समझते है कि मै इन्द्रियो और मन के विषयो के आधीन हूं मुझे इन विषयो से छुटकारा पाने का निरन्तर अभ्यास करते रहना है वे चारो प्रकार के आहार का त्याग कर देते है। उनकी दृष्टि विषयो के त्याग की होती है। इसीलिए वह अनशन या उपवास कहलाता है। कोई निर्धन व्यक्ति साधन न मिलने के कारण भूखा रहता है या परिस्थितिवश कोई भूखा रहता है तो वह अनशन नही कहलायेगा।

जो लोग अनशन नही कर सकते जिनकी शक्ति चारो प्रकार के आहार त्याग की नही उन्हे भी विषयो के त्याग का अभ्यास तो करना ही है। इसलिये उन्हे आत्मकल्याण के लिये अपनी भूख से कुछ कम खाना चाहिये। उनके कम खाने का उद्देश्य विषयो का आंशिक त्याग है। जो व्यक्ति स्वास्थ्य की दृष्टि से ही कम खाते हैं, वह त्याग नहीं है और न वह ऊनोदर ही कहलाता है क्योकि उनकी दृष्टि स्वास्थ्य सुधार की है। लेकिन जो आत्म-कल्याण के लिये विषयो का त्याग करने की दृष्टि से कम खाते हैं वह ऊनोदर कहलाता है।

उपवास का अनुष्ठान शुरू करते हुए यदि भूख की बाधा सतावे तो यह विचार करना चाहिये—मुझे अनेकों बार मजबूरी में अन्न का त्याग करना पड़ा है। आज स्वेच्छा से आत्म-कल्याण के महान् उद्देश्य के लिए मैंने अन्न का त्याग किया है तब उसमें आतुरता क्यों रखूं। आज तक इन्द्रियां विषयों के आधीन रहीं और आत्मा इन्द्रियों के आधीन रहा। किन्तु अब मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं इन्द्रियों के आधीन नहीं रहूंगा बल्कि इन्द्रियों को अपने आधीन रखूंगा। इन्द्रियां अब तक मन की दास बनी हुई थी। पेट भरने पर परितृप्ति का अनुभव करती थी। किन्तु मैं इस ममता के बन्धनों को तोड़ कर अभ्यास करूंगा। इसी हेतु मैंने यह उपवास का अनुष्ठान किया है।

इस प्रकार साधु जीवन की साधना का अभ्यास गृहस्थ दशा में ही किया जाता है। तभी साधु जीवन स्वीकार करने पर उसमें सफल हो पाता है। जैसे कुम्हार कच्चे घड़े को आवा में डालकर पकाता [redacted] इसी प्रकार साधु आत्मा को तप द्वारा तपाता है। तपने पर उसकी आत्मा खरा कुन्दन बन जाती है।

साधु अपने ऊपर ही निर्भर रहते हैं। उन्हें पराश्रयावलम्बन स्वीकार नहीं है। वे भिक्षा मांग कर आहार लेते हैं। किन्तु साधन का अर्थ याचना नहीं है। वह तो भिक्षावृत्ति है। साधु इन्द्रियां और शरीर को दास बनाकर रखते हैं। इस प्रकार से वे आत्म कल्याण का काम लेते हैं। जब शरीर से काम लेते हैं तो उस दास को आहार भी देते हैं जिससे वह बराबर काम करता रहे। किन्तु यह दास बड़ा उद्दण्ड है। उससे जैसा और जितना काम लेना चाहते हैं वैसा और उतना काम वह नहीं देता है। अतः उसे दण्ड भी देते रहते हैं। वे जब भिक्षा [illegible] निकलते हैं तो मन में कुछ अनोखी प्रतिज्ञा करके चलते हैं आहार के लिये पड़गाहने वाला व्यक्ति हाथ में अमुक फल लिये हो। अमुक स्थान में मिले हुए अमुक मकान के पड़गाहन के लिये खड़े हों। यदि प्रतिज्ञा के

अनुसार विधि मिल गई तो आहार ले लेंगे, वरना लौट आवेंगे और अन्तराय मानकर आहार नहीं लेंगे। अथवा आहार के समय कोई अपशब्द सुन लेंगे अपवित्र वस्तु का नाम सुन लेंगे बाल आदि निकल आवेगा तो अन्तराय मानकर आहार छोड़ देंगे। उससे मन में किसी प्रकार की खिन्नता अथवा क्षोभ आदि का अनुभव नहीं करेंगे। बल्कि इस अवसर को कर्म निर्जरा का कारण मानकर सन्तोष करेंगे।

वे आहार के लिए उठते समय किसी रस का भी परित्याग कर देते हैं। क्योंकि वे जिह्वा के स्वाद के लिए भोजन नहीं करते अपितु इस दास शरीर को बनाये रखने के लिए उसे भोजन देते हैं। यह उनका रस परित्याग तप है इस तप का आचरण करते हुए भी वे मन में किसी प्रकार की अतृप्ति या विरसता का अनुभव नहीं करते। बल्कि इन्द्रियों के निरोध के लिए इस तप को आवश्यक समझकर करते हैं। श्रावक भी गृहस्थ अवस्था में इस तप का बराबर अभ्यास करता है। वह कभी रविवार को नमक का त्याग करता है कभी दूसरे रसों का। वह कभी कभी अभ्यास के लिए बिल्कुल नीरस भोजन करता है और फिर भी अतृप्ति का अनुभव नहीं करता है।

साधु मुक्ते को भूमि सोते हैं। वे जब करवट भी बदलते हैं तो सावधान होकर उठ बैठते हैं। पीछी से स्थान का आलेखन करते हैं। तब उस करवट से सोते हैं। वे चटाई काठ के पट्टे, शिला या भूमि पर शयन करते हैं। मृदुशय्या पर नहीं सोते। मृदुशय्या पर सोने से तो गहरी नींद आ जाती है। यदि साधु को गहरी नींद आ जाये तो वे ध्यान-अध्ययन कैसे करेंगे। प्रमाद आने पर वे न सामायिक कर सकेंगे न जीवों की दया पाल सकेंगे।

श्रावक भी उपवास के दिनों में पर्व के दिनों में इसी प्रकार मृदु शय्या त्याग कर साधुओं की तरह शयन करते हैं। इसमें अहिंसा अप्रमाद और ब्रह्मचर्य की पुष्टि का दृष्टिकोण रहता है। मृदु, कोमल

शय्या और बिस्तरों पर शयन करने का इसीलिए निषेध किया है क्योंकि उससे ब्रह्मचर्य और उसकी भावना लेना मे व्याघात पहुचता है।

कर्म की निजरा करने के लिए साधु घोर तप करते हैं। वे ग्रीष्म ऋतु मे तपती हुई शिलाओं पर चिलचिलाती धूप मे बैठकर आतापन योग धारण करते हैं। वर्षा ऋतु मे पेड़ो के नीचे बैठकर और शिशिर ऋतु मे नदी के किनारे बैठकर तपस्या करते हैं। वे कभी पद्मासन से कभी वज्रासन मे और कभी पद्मासन से बैठकर ध्यान करते हैं। डास मच्छर आदि नाना जीव उन्हें सताते हैं। कभी दुष्ट लोग उन्हें उपसर्ग करते हैं। किन्तु वे सारे उपसर्ग और परीषहों को निर्विकार भाव से सहन करते हैं। वे शारीरिक कष्टों को—चाहे वे स्वेच्छा से बुलाये गए हों या दूसरे जीवों के द्वारा दिये गये हों—शान्ति से सहते हैं। कायक्लेश को वे कर्मों की निजरा का कारण समझते हैं। ऐसे अनेकों उदाहरण शास्त्रों मे आये हैं जब मुनियों ने सभी प्रकार के कष्टों को शान्ति के साथ सहन करके आत्मा को शुद्ध मलहीन बनाया। पाण्डवों के सारे अंगों पर अंगार के समान तपे हुए लोहे के आभूषण पहना दिये गये। जिनपालित मुनि को एक कापालिक ने शव समझकर ईंटों और पुर्नों को नावर उन तीनों के सिरों को चूल्हे के समान बनाकर आग जला दी और ऊपर चावल चढ़ा दिये। किसी मुनि को सिंह खा गया। किसी को स्यालनी खाती रही। किन्तु ये सभी मुनि इन उपसर्गों मे अविचल रहे। क्योंकि वे कायक्लेश तप का निरंतर अभ्यास करते रहे थे। उनकी दृष्टि मे आत्मा अमर है शरीर आत्मा से भिन्न है, पर है। उन्हें आत्म हित की चिन्ता रहती थी, शरीर की नहीं। जो अपना नहीं है उसकी क्या चिन्ता करना। आत्मा को न कोई जला सकता है न खा सकता है फिर उसके लिए क्या चिन्ता की जाय। यदि आत्मा मे क्रोध लोभ मोह और विकार उत्पन्न हो जाए, तब तो अवश्य ही चिन्ता की बात हो सकती है। क्योंकि उसमे आत्मा के

शान्ति कोमलता, ऋजुता शुचिता आदि गुण नष्ट हो जाते हैं। ये गुण नष्ट होने पर कठिनाई से मिलते हैं। शरीर चला जाने पर यह बार बार मिल सकता है। फिर मुनिजन तो प्रयत्न करते रहते हैं कि यह शरीर चला जाय सदा के लिए फिर कभी न मिले। उनका कायक्लेश महान प्रयोजन के लिए होता है। वह स्वेच्छा से स्वीकृत तप है बाध्यता कोई नहीं है। जहाँ बाध्यता के कारण काय को कष्ट हो, वह तप नहीं कहलाता।

सोमदत्त नामक एक श्रावक था। वह अष्टमी चौदस आदि पर्व तिथियों में गाँव से बाहर जाकर किसी शून्य घर में एकान्त में तप करता था। स्त्री कुलटा थी। एक बार ऐसा संयोग हुआ कि सोमदत्त नगर के बाहर चौदस के दिन जिस शून्यागार में आ तप कर रहा था वह स्त्री उसी मकान में पलंग और बिस्तर ले गई। उसके साथ उसका प्रेमी भी था। उन्होंने पलंग बिछाया। अंधेरी रात थी। पता नहीं चला पलंग का एक पाया सोमदत्त के पैर पर टिका दिया। वे दोनों पलंग पर बैठकर बातचीत करने लगे। पलंग का पाया सोम के पैर में घुस गया। उसे बड़ा कष्ट हो रहा था। उसने अपनी स्त्री को भी पहचान लिया। किन्तु वह मन में यही विचार करता रहा—राग-द्वेष करके अपनी भावना कलुषित करना ठीक नहीं है। यह पुद्गल को है। मुझे नहीं। अपने इन्हीं शुभ भावों के साथ उसका मृत्यु हो गई।

सोम के घर पर एक बैल था। सोम प्रतिदिन सुबह उसे णमोकार मन्त्र सुनाता था उपदेश भी देता था। बैल उसके उपदेशों से धार्मिक भक्त सा बन गया था। वह णमोकार मन्त्र जब तक सुन नहीं लेता था तब तक चारा पानी भी नहीं खाता पीता था। बैल सोम को न पाकर उसे ढूंढने चल दिया। वह उसी शून्यागार पर पहुँचा। उधर सोम की कुलटा स्त्री और उसका यार सुबह उठे। उन्होंने देखा कि सोम पलंग के पाये से दबकर मर गया है तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। तभी उन्हें बैल

दिखाई पड़ा। लम्बे-लम्बे बाल थे उसके। उन्होंने फ़ौरन सिपाहियों को [illegible] यहाँ भेजा। उसके बाद स्त्री ने नाटक करना शुरू किया। वह छाती कूट-कूट कर रोने लगी—हाय हाय रे! बैल ने मेरे पति को मार दिया। कैसा कृतघ्नी निकला यह बैल। जिसको मेरे पति नित्य अपने हाथ से [illegible] उसी बैल ने मेरे पति को मार डाला। उसके रुदन को सुनकर वहाँ भीड़ इकट्ठी हो गई। लोगों ने बैल को मारना शुरू कर दिया और सभी उसकी निन्दा करने लगे। वह बारबार सिर हिलाता था। आँखों से उसके आँसू बह रहे थे। किन्तु वह बोल नहीं सकता था, अतः अपनी निर्दोषता सिद्ध नहीं कर सकता था। सब लोग उसे राजदरबार में ले गये। बैल राजा के सामने जाकर सिर हिलाने लगा और आँसू बहाता रहा। राजा ने कहा—मालूम होता है कि यह कह रहा है कि मैंने इसे नहीं मारा। बैल के मुँह में [illegible] हो। अगर बैल सच्चा है तो उसका मुँह नहीं जलेगा। बाद में [illegible] लाया गया। बैल ने [illegible] मुँह उठा लिया और [illegible] लोगों को सच्ची बात का पता लगा।

कहने का अर्थ यह है कि शरीर को स्थिर रखते हुए भी धर्म से विचलित नहीं होना चाहिये। साधक लोग इसीलिए [illegible] तप का अभ्यास करते हैं और अभ्यास करके [illegible] खूब तैयारी करते हैं।

लेकिन अनेक लोग शरीर को स्थिर और निश्चल रखते हैं। कोई कान फाड़ लेते हैं। कई साधु [illegible] एक जगह स्थिर नहीं रहते, वे बराबर [illegible] रहते हैं। और नाना भाँति से शरीर को कष्ट देते हैं। किन्तु जिस काय क्लेश का उद्देश्य आत्म-शुद्धि, इन्द्रिय निग्रह और कषायों का निग्रह नहीं है वह काय क्लेश तप नहीं कहलाता।

आचरण करता रहता है। वह प्रमादवश लगे हुए दोषों की शुद्धि के लिये प्रायश्चित करता है। कहा भी है—

प्राय इत्युच्यते लोकश्चित्तं तस्य मनो भवेत् ।
तस्य शुद्धिकर कर्म प्रायश्चित्त तदुच्यते ।।

अर्थात् प्राय का अर्थ लोक-साधु लोक, चित्त का अर्थ है मन। उसकी शुद्धि करने वाला कर्म प्रायश्चित्त कहलाता है। अर्थात् साधुजनों के मन की शुद्धि जिस कार्य से हो वह प्रायश्चित्त है।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र के प्रति बहुमान हो उत्साह और रुचि हो, इनकी प्राप्ति और वृद्धि का प्रयास हो तथा इन तीनों को धारण करने वाले आचार्यों आदि के प्रति आदर भाव हो, उनके गुणों का स्मरण हो, वह विनय कहलाती है।

शरीर की प्रकृति ठीक न हो आत्रा आदि के कारण शरीर थक गया हो ऐसे मुनियों तथा गुरुजनों के पर आदि दबाने मे उत्साह, उल्लास रखना वैयावृत्य कहलाती है।

ज्ञानार्जन की भावना से आलस्य का त्याग अथवा आत्मा के सम्बन्ध मे विचार करना स्वाध्याय कहलाता है। ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन, श्रवण उपदेश आदि भी स्वाध्याय कहलाता है, जिससे आत्मा को वास्तविक स्वरूप का बोध हो।

पर वस्तुओं मे ममकार करना या अहकार करना ही संसार की सारी मुसीबतों का मूल है। इनका त्याग करना त्याग की भावना करना यह व्युत्सर्ग तप कहलाता है।

और चित्त का चचल वृत्ति को छोड़कर मन को विषय-कषाय से हटा कर आत्मा की ओर एकाग्र करना ध्यान कहलाता है।

ये छह प्रकार के तप आभ्यन्तर या अतरग कहलाते हैं। साधु तो इन तपों का आचरण करते ही हैं श्रावक भी इन तपों का सतत अभ्यास करते रहते हैं। श्रावक धर्म साधु धर्म का लघु संस्करण है।

साधु का जीवन भी समाप्त हो जाता ही है। पहले साधु लोग जंगल में पहाड़ों पर गुफाओं में रहते थे। किन्तु काल के प्रभाव से संहनन की हीनता के कारण तथा गृहस्थ लोगों की रुचि और भक्ति धर्म की ओर बढ़ाने के लिये इस कारण से अब साधु नगरों में रहने लगे हैं। किन्तु अब भी उनकी वृत्ति के चारित्र में कोई शिथिलता नहीं आई। वे अब भी इस वीर पंचम काल में उपवास करते हैं। उनका सारा समय अब भी ध्यान, अध्ययन, धर्म चर्चा आदि में व्यतीत होता है।

एक बार आचार्य नमिसागर जी महाराज दिल्ली गए। उनके पास एक आदमी आया। वह हठयोग प्राणायाम आदि का बड़ा अभ्यासी था। उसने महाराज से चर्चा करते हुए कहा—मन को रोकने के लिए केवल प्राणायाम ही सर्वोत्तम साधन है। जो प्राणायाम नहीं कर सकता वह साधु नहीं है। उसने प्राणायाम करके भी बतलाया। फिर बोला—आप क्या जानते हैं? नमिसागर जी महाराज उससे बोले— ठीक है। और प्राण जानता है तो जरा धूप में बैठो। दो घण्टे में वह आदमी घबराकर भाग गया।

वास्तव में जैन साधु को शरीर से ममत्व नहीं होता। उसका इन्द्रियों और मन पर अधिकार रहता है। विषय और कषायों के दमन का वह बराबर प्रयत्न करता रहता है। इसलिए जब मृत्यु का समय आता है तब जैन साधु उससे भयभीत नहीं होता। मृत्यु को वह अपनी परीक्षा निधि मानता है। वह मृत्यु को महोत्सव मानकर उसका स्वागत करता है और जीवन भर उसने व्यवहार संसार के त्याग का जो अभ्यास किया था उसको चरम सीमा पर पहुँचा कर आत्मा के वैभव के स्पष्ट दर्शन करने का पुरुषार्थ करता है। कोई साधु तो उसी समय उस शाश्वत वैभव और आत्मा के परम सौन्दर्य के अधिकारी बन जाते हैं। और जो अधिकारी नहीं बन पाते वे उस वैभव और सौन्दर्य के दर्शन ही कर सके

उत्तम त्याग धर्म

अनादि काल से यह जीव स्व को भूल कर पर द्रव्य को अपना मानकर उसे ग्रहण करता आया है। इसको उस के स्वरूप का ज्ञान नहीं हुआ। जब किसी सयोग से गुरु का उपदेश मिल जाता है या जिनवाणी सुनने को मिल जाती है तब उसे स्व का ज्ञान होता है। स्व का ज्ञान होने पर इस पर से अरुचि हो जाती है और तब यह पर का त्याग करने की ओर उत्साहित होता है। इस पर के ग्रहण से आज तक कभी सुख नहीं मिला हमेशा दुःख ही दुःख मिलता आया है। जब दुःखात्मक वस्तु का त्याग कर दिया जाता है तब सुख शान्ति मिलती है। जब पेट में कब्ज हो जाता है तो खराबी को दूर करने के लिए एनिमा या जुलाब लेते हैं। गन्दगी पेट में बनी रहे साफ न की जाय तो रोग पैदा हो जाते हैं। यदि किसी स्थान पर गन्दगी पड़ी हो तो उसे महतर से साफ करा देते हैं। यदि साफ न कराया जाय तो वह गन्दगी और सड़ जाती है। उससे दुर्गन्धि फैलती है रोग फैलते हैं। इसी प्रकार आत्मा में राग, द्वेष कषाय आदि का जो मल इकट्ठा होगया है उसके कारण जीव को कभी सुख नहीं मिला, कभी शान्ति नहीं मिली। इसलिए सुख, शान्ति प्राप्त करनी है तो कर्ममल को दूर करना ही होगा।

जिस मनुष्य की शक्ति एक मन बोझा उठाने की है उसके ऊपर दो मन बोझा रख दिया जाय तो उसे बहुत वेदना होती है। उस समय उससे भगवान का नाम लेने या दान देने या पूजा करने को कहा जाय तो वह नहीं कर सकता। क्योंकि वह तो बोझ के मारे मरा जा रहा है। इसी प्रकार आत्मा कषायों विषयों मिथ्यात्व आदि का बोझ लिये फिर रहा है। उस बोझ के कारण उसे अपार दुःख हो रहा है। उस समय उससे कहा जाय—भाई! धर्म किया करो। तो वह धर्म की बात नहीं सुनेगा। वह जवाब देगा—मुझे फुरसत नहीं है। मैं तो मरा जा रहा हूं तुम्हें धर्म की सूझी है।

कोई व्यक्ति भूख से व्याकुल है। उस समय उसे कोई उपदेश दो तो उसे वह रुचिकर नहीं लगता। इसी प्रकार इस जीव के तृष्णा की तृषा लगी हुई है। ऐसी अवस्था में इसे त्याग का उपदेश नहीं सुहाता।

यह जीव कभी अशुभ प्रवृत्ति करता है कभी शुभ प्रवृत्ति करता है। दोनों ही इसके लिए भार बनी हुई हैं। जब अशुभ में प्रवृत्त होता है तो इसके परिणामों में क्लेश रहता है। किन्तु जब शुभ प्रवृत्ति करता है तो पुण्य संचय कर लेता है। उस पुण्य संचय का उदय होने पर इसे अच्छी गति अच्छा कुल धन सम्पत्ति वैभव सब मिलता है। किन्तु यह उस वैभव को अपने सुख का कारण मान उस पर अभिमान करने लगता है। विषय में इतराने लगता है। धर्म भूल जाता है और पाप के मार्ग में पड़ जाता है। इस प्रकार यह जीव शुभ और अशुभ दोनों का ही बोझ उठाये फिरता है। इस बोझ के कारण इसे नाना प्रकार की आकुलतायें रहती हैं नाना प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं। यह बोझा उतारे तो इसे राहत मिले। इन शुभ अशुभ का त्याग किये बिना इसे शाश्वत सुख कभी नहीं मिल सकता।

त्याग दो प्रकार का होता है—एकदेश त्याग और सर्वदेश त्याग। एकदेश त्याग गृहस्थों के होता है और सर्वदेश त्याग साधुओं के होता है।

पहले जमाने में गृहस्थ लोग शुद्ध आहार करते थे। उनके आचार व्यवहार शुद्ध रहते थे। इसलिये मुनियों को आहार देने में उन्हें कोई असुविधा नहीं होती थी। उनके शुद्ध भावों से दिये गये शुद्ध आहार से मुनियों के रोग दूर हो जाते थे और उनके धर्म का पालन सुन्दर रूप में होता रहता था। तब मुनियों के चारित्र में प्रायः दूषण नहीं लगता था। और दूसरी ओर आहार देकर श्रावक अपने कर्मों की निर्जरा कर लेता था। अव्रती के हाथ से मुनि आहार नहीं ले सकता। जिनको रात्रि भोजन का त्याग हो अष्टमूल गुणधारी हो जो पानी छानकर पीता

उत्तम त्याग धर्म

अनादि काल से यह जीव रस का भूखा बन कर पर द्रव्य को अपना मानकर उसे ग्रहण करता आया है। इससे उसे स्व स्वरूप का ज्ञान नहीं हुआ। जब किसी समागम से गुरु का उपदेश मिल जाता है या जिनवाणी सुनने को मिल जाती है तब उसे स्व का ज्ञान होता है। स्व का ज्ञान होने पर इसे पर से अरुचि हो जाती है और तब यह पर का त्याग करने की ओर उत्साहित होता है। पर पदार्थ के ग्रहण से आज तक कभी सुख नहीं मिला, हमेशा दुःख ही दुःख मिलता आया है। जब दुःखदायक वस्तु का त्याग कर दिया जाता है तब सुख शान्ति मिलती है। जब पेट में कब्ज हो जाता है तो उसको दूर करने के लिए एनिमा या जुलाब लेते हैं। गन्दगी पेट में बनी रहे, साफ न की जाय तो रोग पैदा हो जाते हैं। यदि किसी स्थान पर गन्दगी पड़ी हो तो उसे मेहतर से साफ करा देते हैं। यदि साफ न कराया जाय तो वह गन्दगी और सड़ जाती है। उसमें दुर्गन्धि फैलती है, रोग फैलते हैं। इसी प्रकार आत्मा में राग, द्वेष, पापादि कर्मों का जो मल इकट्ठा होगया है उसके कारण जीव को कभी सुख नहीं मिला, कभी शान्ति नहीं मिली। इसलिए सुख शान्ति प्राप्त करना है तो कर्ममल को दूर करना ही होगा।

जिस मनुष्य की शक्ति एक मन बोझा उठाने की है उसके ऊपर दो मन बोझा रख दिया जाय तो उसे बहुत वेदना होगी है। उस समय उससे भगवान का नाम लेने या दान देने या पूजा करने को कहा जाय तो वह नहीं कर सकता। क्योंकि वह तो बोझ के मारे मरा जा रहा है। इसी प्रकार आत्मा कषाया विषया मिथ्यात्व आदि का बोझ लिये फिर रहा है। उस बोझ के कारण उसे अपार दुःख हो रहा है। उस समय उससे कहा जाय—भाई! धर्म किया करो। तो वह धर्म की बात नहीं सुनेगा। वह जवाब देगा—मुझे फुरसत नहीं है। मैं तो मरा जा रहा हूँ, तुम्हें धर्म की सूझी है।

कोई व्यक्ति भूख से व्याकुल है। उस समय उसे कोई उपदेश दे तो उसे वह रुचिकर नहीं लगता। इसी प्रकार इस जीव के तृष्णा का तृषा बढ़ी हुई है। ऐसी अवस्था में इसे त्याग का उपदेश नहीं भासता।

यह जब कभी अशुभ प्रवृत्ति करता है कभी शुभ प्रवृत्ति करता है। दोनों ही इसके लिए भार बना हुई है। जब अशुभ में प्रवृत्त होता है तो इसके परिणामों में रौद्रता रहती है। किन्तु जब शुभ प्रवृत्ति करता है तो पुण्य संचय कर लेता है। उस पुण्य संचय का उदय होने पर इस अच्छी गति अच्छा कुल धन रूप वैभव सब मिलता है। किन्तु यह उस वैभव का रूप का कुल का पाकर उन पर अभिमान करने लगता है, ऐश्वर्य में इतराने लगता है। आपा भूल जाता है और पाप के मार्ग में पड़ जाता है। इस प्रकार यह जीव शुभ और अशुभ दोनों का ही बोझ उठाये फिरता है। इस बोझ के कारण इसे नाना प्रकार की आकुलतायें रहती हैं नाना प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं। यह बोझा उतारे तो इसे राहत मिले। इन शुभ अशुभ का त्याग किये बिना इसे शाश्वत सुख कभी नहीं मिल सकता।

त्याग दो प्रकार का होता है—एकदेश त्याग और सर्वदेश त्याग। एकदेश त्याग गृहस्थों के होता है और सर्वदेश त्याग साधुओं के होता है।

पहले जमाने में गृहस्थ लोग शुद्ध आहार करते थे। उनके आचार व्यवहार शुद्ध रहते थे। इसलिये मुनियों को आहार देने में उन्हें कोई असुविधा नहीं होती थी। उनके शुद्ध भावों से दिये गये शुद्ध आहार से मुनियों के रोग दूर हो जाते थे और उनके धर्म का पालन सुन्दर रूप में होता रहता था। तब मुनियों के चारित्र में प्राय दूषण नहीं लगता था। और दूसरी ओर आहार देकर श्रावक अपने कर्मों की निर्जरा कर लेता था। अव्रती के हाथ से मुनि आहार नहीं ले सकता। जिसको रात्रि भोजन का त्याग हो अष्टमूल गुणधारी हो जो पानी छानकर पीता

हो तथा नित्य देव दर्शन करता हो और शुद्ध आहार करता हो ऐसे व्यक्ति के हाथ से मुनि आहार लेते हैं। तभी उनका मुनियम पल पाता है और तभी श्रावक अपने कर्तव्य का पालन करके धर्म की गाडी को चलाता है।

एक श्रावक गृहस्थ लाभ का त्याग करने का प्रयत्न करते है। साधारणत किसी व्यक्ति से दस पांच रुपया देने को कहा जाय तो नहीं देता। किन्तु उससे यह कहा जाय कि तुम्हें पुण्य लगेगा तो वह दे देता है। पुण्य तो बीज के समान है। जब किसान जब बीज बोने जाता है तो धोती में बांधकर ले जाता है। किन्तु जब काट कर लाता है तो उसे अनाज को लाने के लिये गाडी से लानी पडती है। इसी प्रकार पुण्योदय से जब मनुष्य जन्म उत्तम कुल उत्तम धर्म मिला और उस धर्म का आचरण किया भगवान की पूजा की दान पुण्य किया तो वह अपने कर्मों की निर्जरा भी करता है और महान पुण्य का बंध भी करता है जिससे उसे अगले जन्म में पुन महान वैभव की प्राप्ति होती है। किन्तु दूसरा पुण्य ऊसर जमीन में बोये हुए अन्न की तरह होता है। जब धर्म की आराधना करते हुए निदान करते हैं, भोगों की आकांक्षा करते हैं तो उसमें अशुभ कर्म का बन्ध कर लेते है।

आचार्य उपदेश दे रहे हैं—भव्य प्राणियो ! हम सब श्रीमन्त हैं। हमारे पास रत्नत्रय का खजाना है। अनन्त चतुष्टय हमारे पास है। हम दरिद्री नहीं हैं। यदि त्याग किया जाय तो हमें क्या नहीं मिल सकता। एक अन्तमुहूर्त भर में हमें केवलज्ञान मिल सकता है। इस रत्नत्रय पर धूल पड गई है। हमारे खजाने की हमने बहुत समय से सार सभाल नहीं की। इसलिये इसमें कचरा भर गया है। उस धूल को उस कचरे का निकाल बाहर करो। उसका त्याग कर दो। तुम भूल से उस कचरे को अपना खजाना समझ बैठे हो इस नासमझी को छोडकर अपने वास्तविक खजाने की सार सभाल करो। तुम्हें खजाना अवश्य मिलेगा।

जगल म एक साधु रहते थे। राजा उधर से निकले। देखकर उसे दया आई—बेचारे के पास खाने पहनने को कुछ नहीं है। उसने १००) नौकर के हाथ भेजे। साधु बोले—गरीबों को दे देना। नौकर लौट गया। उसने राजा से जाकर कहा। राजा ने सोचा—कम है और भेजना चाहिये। उसने १०००) भेजे। साधु ने फिर लौटा दिये। इस प्रकार राजा बार-बार रकम बढ़ाता रहा और साधु उसे लौटाते रहे। तब राजा स्वय दो लाख लेकर आया। किन्तु साधु बोले—ये रुपये गरीबों को दो। मुझे जरूरत नहीं है। मैं तो श्रीमन्त हूँ। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—आप अपना माल कहाँ रखते हैं। साधु बोले—यहीं पर। राजा ने समझा—यहीं आसपास इन्होंने कहीं गाड़ रक्खा होगा। राजा वहाँ रह गया और बराबर देखता रहा कि साधु अपना माल कहाँ रखते हैं। जब कुछ पता न चला तो वह साधु से बोला—महाराज! मेरे खजाने में धन की कमी आ गई है। आप कुछ दे दीजिये। साधु बोले—राजन्! पहले त्याग करो तब मिलेगा। राजा ने साधु के कहने से राजपाट त्याग दिया और मुनि बन गया। कुछ दिन गुरु के पास रहकर अभ्यास किया। तब एक दिन गुरु बोले—तुम्हें अब खजाने चाहिये या न? मुनि बोले—गुरुदेव! आपने मुझे बड़े भारी खजाने की चाबी सौंप दी है। मैं भी प्रयत्न करके आपके समान बन जाऊँगा। अब तक मेरे पास राजपाट धन वैभव सब कुछ था किन्तु मैं दरिद्री था। आपने वह सब छुड़ा दिया। मेरे पास कोई धन दौलत नहीं रही किन्तु मैं अब श्रीमन्त बन गया। आपने मुझे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र देकर मेरे दारिद्र्य को दूर कर दिया।

वस्तुत त्याग से वैभव मिलता है। थोड़ा होता है थोड़ा ही त्याग से वह संचित होता है। जब महावीर ने लक्ष्मी निक्षेप लक्ष्मी पीछे-पीछे चली। उन्होंने वह छोड़ दी

नहीं हुई। जब केवलज्ञान हुआ तो वह समवशरण बनकर विभिन्न रूपों में आ गई। किन्तु भगवान ने उसका स्पर्श नहीं किया। वे आसन से चार अंगुल ऊपर विराजमान हुए। जब वे चलते तो वह कमल बनकर पांवों तले में लोटती फिरती। किन्तु भगवान ने उसके ऊपर कभी पग रखकर स्पर्श नहीं किया।

लोग समझते हैं लक्ष्मी कमाने से आती है या भाग्य से बढ़ती है। उनकी यह नासमझी है। एक नगर में एक धर्मात्मा सेठ रहते थे। उसके सात पुत्र थे। सभी गुणी और सदाचारी। एक दिन रात में सेठ के पास लक्ष्मी आई। सेठ बोले—अहो! तू कौन है और यहाँ क्यों आई है? लक्ष्मी बोली— मैं लक्ष्मी हूँ। अब मैं आपके यहाँ से जाना चाहती हूँ। मैं सात दिन आपकी और सेवा करूँगी, फिर चली जाऊँगी। सेठ बोले -ठीक है। सेठ ने यह सोचकर सन्तोष धारण कर लिया कि मेरे शुभ कर्म का उदय जब तक था तब तक लक्ष्मी मेरे पास रही। अब शुभ कर्म समाप्त होकर अशुभ कर्म का उदय आयेगा तो लक्ष्मी चली जायगी। इसमें शोक या चिन्ता करने की कौन सी बात है। उसने अपने परिवार को बुलाया और सारी घटना समझा कर बोला— अब लक्ष्मी तो जाने वाली है। अतः अपने पास जो धन है उसे सात क्षेत्रों में सात दिन में लगा देना है।

वह प्रतिदिन दान करता ही था किन्तु अब तो उसने अपने धन को खुले हाथों से धर्म धर्मायतनों आदि में लगाना आरम्भ कर दिया क्योंकि वह समझ गया था कि सात दिन के बाद मेरे पास धन नहीं रहने वाला है। सात दिन बाद लक्ष्मी फिर आई और सेठ के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। सेठ बोला—तो अब तुम जा रही हो। लक्ष्मी बड़े संकोच के साथ बोली—मैं कैसे जा सकती हूँ आपने तो मुझे बांध लिया है। दान करके आपने मुझे हमेशा के लिए अपनी दासी बना लिया है।

जो दान देते हैं त्याग करते हैं उन्हें मिलता है। जो भोग करते हैं किन्तु दान नहीं करते, उनका क्षय होता रहता है। लोग दान को

करते नहीं और भगवान के पास जाकर मांगते हैं। किन्तु मांगने से कहीं मिलता है। और मांगते भी क्या हैं—कचरा।

वह भगवान के सामने जाकर कहता है—भगवन्! मैं तेरे लिए घरबार छोड़कर आया हूं और साथ में बाल बच्चे हैं। वह उनके सामने बड़े जोर-शोर से पढ़ता है—साधु नहीं गुणगान पुनि नरराज परिजन साथ जी। मैं सायहू गुण भक्ति मन भव भीजिये जिनराय जी। और इस पढ़ने के तुरन्त बाद ही कहता है—भगवन्! मुझे लड़की का ब्याह करना है। रुपया पास नहीं है। तुम्हीं बेड़ा पार लगा दो। मैं तुम्हारे ऊपर चांदी का छत्र चढ़ाऊंगा। भगवान उसकी बातें सुन-सुन कर शायद हंसते होंगे। यदि मंदिर में बैठे भगवान बात करते तो शायद यह पूछते—तू मुझसे तो मांगता है पहले यह बता तूने मुझे क्या दिया है। तू कुछ न दे सके तो इतना तो दे कि अपने इन्द्रिय विषयों को कुछ कम कर दे।

जीवन में जिसके त्याग का अभ्यास है वह मरते समय सब कुछ शान्ति से छोड़ सकता है। किन्तु जिन्हें त्याग का अभ्यास नहीं है वे छोड़ते नहीं उन्हें छोड़ना पड़ता है। एक सेठ था। बड़ा कंजूस। कभी दान तो जानता भी नहीं था। उसके एक लड़की थी। अभी कुंवारी थी। सेठ एक बार बीमार पड़ गया। मरणासन्न अवस्था थी। प्राण निकल रहे थे। पास में एक झाड़ू रखी थी। वहीं बछड़ा बंधा हुआ था। वह झाड़ू चबाने लगा। सेठ का गला बन्द हो गया था, बोल नहीं सकता था। उसने देखा बछड़ा झाड़ू खाये जा रहा है। उसने उंगली से इशारा किया। लड़की ने समझा—पिता जी मरते समय मुझे इशारा कर रहे हैं कि यहां धन गड़ा है। संयोग की बात कि सेठ धीरे धीरे उस बीमारी से ठीक हो गया। तब एक दिन लड़की ने पूछा—पिता जी! पानी से गड़े हुए धन की ओर

ना ? सेठ बोला—पगली, वह तो म बछडे को और इशारा कर रहा था। वह भाडू माये जा रहा था।

इस प्रकार जिन्हें त्याग का जीवन म अभ्यास नही है, व मरते समय मोह नहीं छोड पाते। और बड़े सक्लिष्ट परिणामो स मरते हैं। उनके मन मे धन और अपने जन की वासना बनी रहती है। किन्तु जिन्हें त्याग का अभ्यास होता है, व मरते समय तनिक भी घबडाते नहीं। उनके परिणाम निमल रहते है। उस समय उनका आयु बंध होता है तो शुभ गति का ही होता है। उनके राग-शोक सब नष्ट हो जाते है।

दक्षिण मे एक धर्मात्मा श्रावक था। वह एक दिन पूजा करने का द्रव्य लेकर जा रहा था। रास्ते मे एक बगीचा पडता था। जब उसके सामने से वह निकला तो एक साप ने निकल कर घुटन पर उसे काट खाया। उसने समझ लिया कि अब मृत्यु निश्चित है। वहा स पांच मील पर आचाय पायसागर जी महाराज ठहरे हुए थ। वह दौडा दौडा महाराज के पास पहुचा। और बोला—महाराज ! मुझे मरना है। जल्दी सस्कार करो। उसने तत्काल क्षुल्लक दीक्षा लली। महाराज बीजाक्षर मंत्र पढते रहे। धीरे धीरे उसका जहर उतर गया और ठीक हो गया। अभी दो साल पहले उनकी मृत्यु हो गई। उनका नाम सुबल महाराज था।

य दश धम भगवान के वचन है। यदि भगवान का धम हमारे हृदय मे रहेगा तो हमारा कल्याण हो जायगा। पव के निमित्त से तुम लोग शुद्ध आहार-जल स रहे हो। यदि तुम्हारे घर पर इसी प्रकार नित्य शुद्ध आहार बनता रहे तो कितना लाभ हो। तुम्हारे सारे रोग नष्ट हो जाय और अनायास ही तुम्हें पुण्य बंध हो। तुम्हारा वह शुद्ध आहार जल जब साधु के पेट मे जायगा तो उससे उनका भी चारित्र निमल बनेगा। जब साधु की भावना को नष्ट करने वाला अन्न मिलता है तो

सौरूप्यमभयादाहुराहाराद भोगवान् भवेत ।
आरोग्यमौषधाज्ज्ञेय श्रुतात्स्याच्छ्रुतकेवली ॥

अर्थात् अभयदान से सुन्दर रूप मिलता है । आहारदान से भोग मिलते हैं । औषधिदान से आरोग्य प्राप्त होता है । और शास्त्रदान से श्रुतकेवली होता है ।

शास्त्रों में कहा है—शक्तितस्त्याग तपसा । अर्थात् त्याग और तपस्या अपनी शक्ति के अनुसार करना चाहिए । इन कामों में अपनी शक्ति छिपानी नहीं चाहिये । और न अपनी शक्ति से अधिक करना चाहिए । जिन्होंने शक्ति के अनुसार त्याग और तपस्या की है उनका ससार में यश फैला और उनका कल्याण भी हुआ ।

सबसे प्रथम है अभयदान । हमारे समक्ष कोई किसी को सताता है । मारता है पीड़ा देता है तो हम हर सभव उपाय से करुणा बुद्धि से उसकी रक्षा करनी चाहिए ।

विन्ध्य पर्वत की गुफाओ में एक सिंह और एक सूकर रहते थे । एक दिन दो मुनिराज इन्हीं गुफाओ में से एक गुफा में ठहरे । उन्हें देखते ही सूअर को जाति स्मरण ज्ञान हो गया । उसने मुनियों के उपदेश से कुछ व्रत ग्रहण कर लिए । उधर मनुष्यों की गध पाकर सिंह वहां आया और मुनियों को देखकर वह उन्हें खाने के लिए झपटा । सूअर देख रहा था । वह द्वार रोककर खडा हो गया । दोनो में युद्ध होने लगा । एक मुनियों की रक्षा की भावना से लड रहा था और दूसरा मुनियों को भक्षण के लिए लड रहा था । दोनो लडते लडते मर गये । सूअर तो अभयदान की शुभ भावना के कारण सौधर्म स्वर्ग में जाकर देव बना और ऋद्धियों का धारक हुआ । तथा सिंह का जीव अपने क्रूर परिणामो के कारण नरक में गया । कहा भी है—भावना भव नाशिनी । भावना से भव का नाश हो जाता है । तब अभयदान की

भावना के आधार से सुधार स्वयं में देख सकता हो इसमें क्या आश्चर्य की बात है।

रत्नपुर के राजा श्रीषेण बड़े धार्मिक पुरुष थे। एक दिन दो मुनिराज आदित्यगति और अरिंजय श्रीषेण के यहाँ आहार के लिए पधारे। राजा ने बड़ी भक्ति और श्रद्धा से उन्हें आहारदान दिया। इस पुण्य दान से देवों ने तत्काल रत्नों और सुगन्धित पुष्पों की वर्षा की। यही श्रीषेण आगे चलकर भावनाओं के द्वारा तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध करके सोलहवें तीर्थङ्कर शान्तिनाथ हुए। भगवान शान्तिनाथ तीर्थङ्कर थे कामदेव थे और चक्रवर्ती थे। आहारदान की ऐसी महिमा है।

अर्धचक्री नारायण कृष्ण तीन खण्ड के अधिपति थे। द्वारका उनकी राजधानी थी। एक बार उन्होंने देखा—द्वारका के बाहर एक मुनि पधारे हुए हैं। किन्तु उन्हें कोई भयानक रोग हो गया है। श्रीकृष्ण ने देखा कि मुनिराज घोर तपस्वी हैं। रोग से उनको वेदना तो बहुत है किन्तु वे अपने संयम से उस वेदना से जरा भी विचलित नहीं हैं। कृष्ण को उनका रोग देखकर बड़ा दुःख हुआ। वे सोचने लगे कि मुनिराज का रोग किस प्रकार ठीक हो। उन्होंने अपने राजवैद्य को बुलाकर पूछा। वैद्य बोला—महाराज! रोग तो ठीक हो जायगा। किन्तु दवा लड्डू में देनी पड़ेगी तथा जब तक रोग ठीक न हो तब तक और किसी प्रकार का भोजन नहीं कर सकेंगे। कृष्ण ने उस दवा के शुद्ध लड्डू बनवाए और नगर भर में बँटवा दिए। तथा यह भी सूचना दे दी कि मुनिराज जब आहार के लिए आवें तो उन्हें केवल ये ही लड्डू आहार के लिए दिये जायँ। साथ ही कि स्वयं भी ये ही लड्डू खावें। द्वारका में इस प्रकार का आठ दिन का पर्व घोषित कर दिया जिसमें केवल लड्डू ही खाये जाते हैं। मुनिराज ने जहाँ भी आहार लिया वे लड्डू ही आहार में मिले और आठ दिन में ही उनका रोग शान्त हो गया। उनका रोग

जरो जरो शान्त होता जाता था, कृष्ण को मन में वही वस हो रहा बढ़ता जाता है। वे निरन्तर षोडश कारण भावना भाते रहते थे। फलत उस औपशमन के निमित्त से उन्हें तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध हो गया।

शास्त्रदान के प्रभाव से एक ग्वाल कुन्दकुन्द आचार्य बन गया। गोविन्द नामक ग्वाल पद्मनन्दी मुनि को एक जंगल में वृक्ष की कोटर में मिले एक ग्रन्थ को भेंट करने के फल स्वरूप आगे चलकर श्रुतकेवली हुआ।

दान की महिमा अचिन्त्य है। दान त्याग का मूलरूप है। दान देने का अर्थ द्रव्य का देना नहीं है। द्रव्य तो दुनियां में सभी देते हैं। किन्तु दिए हुए द्रव्य से मोह का त्याग करना सही अर्थ में दान कहलाता है। लेकिन कुछ लोग द्रव्य दान करते हैं किन्तु द्रव्य से उनका मोह नहीं छूट पाता। वे द्रव्य देकर उसमें अपना नाम चाहते हैं यश चाहते हैं। यह त्याग नहीं कहला सकता। वह तो पुण्य का व्यापार है। व्यापार में जिस प्रकार कम धन देकर अधिक माल चाहते हैं उसी प्रकार पुण्य के इस व्यापार में भावना रहती है। इसमें इतना यह है कि धन का लोभ कम हुआ किन्तु यश का लोभ बढ़ गया। लोभ तो रहा ही। लोभ का प्रसंग प्रसंग जाति नहीं होती। उसका बाहरी रूप अलग हो सकता है। लेकिन लोभ तो उन भिन्न भिन्न रूपों में एक ही है। उसमें अन्तर रहता है केवल तारतम्य का।

बुद्धिमान और मूर्ख दोनों में क्या अन्तर है? बुद्धिमान समय को पहचानता है और उससे लाभ उठाता है। मूर्ख समय को पहचान नहीं पाता। इसलिये वह उससे लाभ नहीं उठा पाता। संसार में जीवित अवस्था में राजा रंक धनिक निर्धन व भेद रहते हैं। किन्तु मरने पर कोई अन्तर नहीं रहता। मरने के बाद कोई राजा अपना राज्य सम्पत्ति खजाना ले गया हो ऐसा कभी सुना नहीं। जीवन में धन का

तृष्णा करके कुछ लोग धन को बढ़ा लेते हैं अन्य नहीं बढ़ा पाते। किन्तु मरने पर छोड़ना सबको पड़ता है। मृत्यु वास्तव में साम्यवादी है अर्थात् सब समान हैं। बुद्धिमानी यह है कि जो छोड़ना पड़ेगा, उसे पहले ही छोड़ दिया जाय। यदि सम्पूर्ण आरम्भ-परिग्रह को छोड़ सकें तो सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। यदि सर्वस्व त्यागी न बन सकें तो अपने [illegible] में से बराबर देते रहना चाहिए। हमने संसार [illegible] में जो परिग्रह का संचय करके पाप किया है उसका प्रायश्चित्त दान द्वारा होता है। दान [illegible] तो परिग्रह का प्रायश्चित्त है। और यह अपने और दूसरे के कल्याण के उद्देश्य से किया जाता है। अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो [illegible] अपने और पर के अनुग्रह के लिए अपनी वस्तु का [illegible] है। जिस द्रव्य के त्याग से स्व-पर का कल्याण हो [illegible] है [illegible] कहा जा सकता है।

यह श्रावकों का एकदेश त्याग है। साधु [illegible] हैं। वे सभी आरम्भ परिग्रह के त्यागी होते हैं। वे [illegible] की कामना करते हुए सदा धर्मध्यान करते रहते हैं। [illegible] साधन क्या है? बाह्य पदार्थ तो कुछ भी नहीं है। किन्तु उनके [illegible] जो आन्तरिक धन है—रत्नत्रय है उसे वे [illegible] हैं। वे चाहते हैं कि यह मनुष्य [illegible] इस मामले में वे महादानी हैं। और [illegible] से बड़े से बड़े दानी हैं जो जगत् में जाना [illegible] है। वे सबसे बड़े दानी इसलिए हैं क्योंकि वे [illegible] आत्मा के सब मल को भी त्याग कर [illegible]

संसार में त्यागी ही महान होता है [illegible] का निरन्तर अभ्यास करते रहना [illegible]

उत्तम आकिंचन्य धर्म

आकिंचन्य का अर्थ है कि मैं अकिंचन हूँ मेरा पर पदार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है। पर पदार्थ मेरे नहीं हैं आज तक प्राणी पर को अपना मानता आया है किन्तु पर पदार्थ बाह्य परिग्रह हो या आभ्यन्तर यह दोनों ही हमारे नहीं हैं इन्हें अपना मानना हमारे लिए उपाधि हैं। बाह्य परिग्रह में जो हमारा मोह आभ्यन्तर परिग्रह है वही वास्तव में परिग्रह है। पदार्थ परिग्रह नहीं है। पदार्थ की ममता परिग्रह है। जब तक राग परिणति है तब तक परिग्रह से रहित नहीं कहा जा सकता। किसी व्यक्ति के पास यदि कोई परिग्रह नहीं है किन्तु उसके मन में उसकी आकांक्षा है तो वास्तव में वह परिग्रही है। दूसरी ओर संसार के सम्पूर्ण वैभव और ऐश्वर्य हों और उसमें आसक्ति न हो तो वह अपरिग्रही है। आत्मा से भिन्न जितनी भी वस्तु हैं जब तक मन में उनके प्रति अपनत्व है तब तक वह उनके सम्बन्ध में यही सोचता है कि मैं इन्हें कैसे छोड़ूँ। वह उन पर भी अपने लिए इतना अधिकार बना लेता है कि उसे वह पर भी अपना स्वरूप मालूम पड़ता है। स्थिति तो यहाँ तक हो गई है कि यह शरीर और शरीर से सम्बन्धित पदार्थ इन सबको ही यह आत्मा समझ बैठा है। इनसे होने वाले सुख दुख को अपना सुख दुख मानता है। जिनसे हमें सुख दुख मिल सकता है उन्हें अपना मानता है और जिनके कारण शारीरिक कष्ट मिलता है उन्हें पर मानता है। इस स्व पर की कल्पना में आत्मा की ओर उन्मुखता समाप्त हो गई है और आत्मा और उसके गुणों को स्व मानने के प्रति उदासीन हो गया है। इससे पर के सुख का प्रयत्न करता है लेकिन आत्म सुख की ओर ध्यान नहीं देता।

साधु बनकर निर्ग्रंथ हो जाते हैं किन्तु यदि परिग्रह छोड़ने के बाद भी उसमें वासना बना रहे तो वह साधु बनने के लायक नहीं है। श्रावक

कार्यों में उलझ कर हम भूल जाते हैं और हमारी यह भावना बन जाती है कि मुझे सदा के लिए यहीं पर रहना है और मेरे बीबी बच्चे जमीन जायदाद यह सब भी मेरे साथ रहेंगे।

सिकन्दर बादशाह ने सारी दुनिया फतह कर ली थी। संसार में उसके पास धन दौलत की कमी नहीं थी। लेकिन जब उसकी मृत्यु होने लगी तो उसने अपने मंत्री को बुलाया और उससे कहा—मैं संसार छोड़कर जा रहा हूं। मैंने लाखों औरतों के मांग का सिन्दूर पोंछ डाला, लाखों लोगों को परिवारहीन बना दिया न जाने मैंने कितनी हत्यायें की। यह सब मैंने इसलिए किया था कि यह राजपाठ धन दौलत सब मेरे साथ जायगा। लेकिन आज मरते समय मुझे यह महसूस हो रहा है कि मेरे साथ इनमें से कुछ भी जाने वाला नहीं है, यहां तक कि यह शरीर भी यहां रह जावेगा। मैंने जिन्दगी भर जो भूल की मैं यह चाहता हूं कि दुनिया इस भ्रम को न दुहराये। जब मेरी अर्थी निकले तो सारी पल्टन और सारा खजाना मेरे साथ रहे और मेरे कफन से मेरे दोनों हाथ बाहर निकाल देना जिससे लोग समझ सकें कि जब सिकन्दर पैदा हुआ था तो मुट्ठी बांधकर आया था और जाते समय सारा हाथ खाली है। उसके साथ कुछ भी नहीं जा रहा है। जो कुछ जा रहा है वह उसके ऐमाल है।

यह एक नग्न सत्य है जो सिकन्दर ने दुनिया को नसीहत देने के लिए बताया था। लेकिन यह ऐसा सत्य है जिसे बच्चा बच्चा जानता है लेकिन कोई भी उस पर अमल नहीं करता अर्थात् मानता नहीं है। ज्ञान और मान्यता में यही अंतर है। अर्जुन बड़ा विद्वान और ज्ञानवान होकर भी इसकी मान्यता प्रायः मिथ्या रहती है। जैन शास्त्रों में इसी मिथ्या मान्यता को मिथ्यादर्शन कहा है और जब तक यह मिथ्यादर्शन है तब तक इस जीव का कल्याण नहीं हो सकता।

एक बार राजा भोज रात्रि को अपने पलंग पर [illegible] राज्य के विषय में विचार कर रहे थे और विचार [illegible] संस्कृत का एक श्लोक गुनगुना रहे थे तभी [illegible] एक चोर चोरी करने के उद्देश्य से वहीं घुस आया [illegible] कि स्वयं महाराज जाग रहे हैं इसलिए वह [illegible] कोने में उनके पलंग के नीचे जा छिपा। राजा [illegible] तीन चरण तो बना लिये लेकिन चौथा चरण नहीं [illegible] उन्हीं तीन चरणों को बार बार दुहरा रहे थे। वे चरण [illegible] थे —

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः । गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः

चोर समझ गया कि महाराज से चौथा चरण नहीं बन रहा है। वह भी संस्कृत का बड़ा [illegible] था। [illegible] गया और उसने चौथे चरण की पूर्ति इस प्रकार की —

सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति ॥

श्लोक का अर्थ यह है कि घर मनोहर [illegible] [illegible] स्त्रियाँ हैं। मित्र सब अनुकूल हैं [illegible] और सब नौकर मेरी आज्ञा में [illegible] हैं। [illegible] द्वार पर हाथी गर्जना करते रहते हैं [illegible] यह सब कुछ [illegible] पर कुछ भी नहीं रहता।

जिनके महलों में हजारों रंग के फानूस थे
झाड़ उनकी कब्र पर अब हैं और निशां कुछ भी नहीं

जो आया है उसे एक दिन जाना है और खाली हाथ ही जाना है। मनुष्य अपने धन रूप यौवन आदि पर इतना इतराने लगता है कि वह दूसरों को कुछ नहीं समझता है लेकिन वह भूल जाता है कि उसकी जिन्दगी केवल चार दिन की है। सप्ताह में केवल सात दिन होते है। एक दिन उसका पन्ना हाथ में निकल जाता है और एक दिन मरने में। इन चार दिनों की जिन्दगी में क्या इतराना और क्या घमण्ड करना। लेकिन इतराने वाले की दशा उस गधे जैसी है जो गरमी में चर चर करता है और समझता है कि मैंने इतना मैदान चर लिया। दो व्यक्तियों ने एक नदी पार की। एक के सिर पर रुई की गठरी थी और दूसरे के सिर पर नमक की गठरी थी। रुई की गठरी वाला समझता था कि मैं बहुत मालदार हूँ और नमक की गठरी वाले को वह तुच्छ समझता था। जब वे बीच धारा में थे तभी जोर की बारिश होने लगी। दोनों गठरी भीग गई। अब रुई भीग कर भारी हो गई उससे चला नहीं जाता उसमें इतना बोझ हो गया कि वह अपने शरीर के भार को नहीं सम्भाल सका और गिर गया। वह उस गठरी के बोझ के कारण फिर उठ भी नहीं सका। लेकिन नमक की गठरी हल्की होती गई और उस व्यक्ति ने आसानी से नदी पार कर ली। यही दशा सारे सांसारिक जीवों की होती है। जिनके पास अधिक धन और परिग्रह है वे निर्धन व्यक्ति को बड़ा घृणा की दृष्टि से देखते है और अपने आप को महान समझते है लेकिन उनकी दशा गठरी रुई की तरह है। वह इस संसार सागर को कभी पार नहीं कर सकते। घोड़े के ऊपर खूब जेवर लाद दिया जाये। लोग समझते है कि घोड़ा कितना सुन्दर है किन्तु घोड़ा समझता है कि यह सब मेरे ऊपर भार है। सेठानी जेवर पहन कर मन्दिर जाती है लेकिन वह स्वतन्त्र नहीं है। उन जेवरों की रक्षा के लिए दो नौकर डण्डा लेकर चलते हैं। वह मन्दिर में भी भगवान के दर्शन नहीं कर पाती उसे अपने जेवरों का ही ध्यान रहता है। वास्तव में लोग परिग्रह के पीछे पागल हो रहे है।

रहता। जंगल है यहाँ बड़ा डर है। गोरख ने गुरु के जाते ही उनका धन टटोला। उसमें सोने की दो ईंटें दिखाई पड़ गईं। गोरख उन्हें देखकर मन ही बड़बड़ाया— अरे तो ! यह है गुरु का डर। चलो मैं इस डर को ही दूर कर दूं। उसने चुपचाप वे ईंट कुएं में पटक दीं और थाले से पत्थर लेकर धन में रख लिये। फिर गुरु के आने पर दोनों वहाँ से चल दिये। रात हुई तो गुरु बोले—गोरख ! यहां डर तो नहीं ? गोरख नाथ मुस्कराकर बोले—गुरुजी ! डर था ही वह। डर तो मैं पीछे ही फेंक आया साधु को डर किसका ?

जब तक पर वस्तु के प्रति मोह भावना रहती है तब तक डर रहता है। जब पर के प्रति भाव छूट जाती है और शल्य रहित हो जाता है तब वह निर्भय हो जाता है और व्रती बन जाता है। जब तक शल्य रहेगा तब तक वह सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता सम्यग्ज्ञानी नहीं बन पा सकता। पहले श्रावक लोग परिग्रह परिमाण करते थे। आज तो वच्चों का भी परिमाण नहीं। पाप के उदय से भोग की भावना बढ़ती जा रही है और वच्चे अधिक धन होते जा रहे हैं। पहले श्रावक मोक्ष मार्ग का साधन करने के लिये त्याग करते थे किन्तु आज तो त्याग तक कम नहीं कर सकते। पहले लोग अकिंचन भावना भाते रहते थे। किन्तु आज तो सभी लखपति करोडपति बनने का दिन रात प्रयत्न करते रहते हैं। आज सट्टा आम हो गया है–रुई का सट्टा चान्दी सोने का सट्टा, पानी का सट्टा मटर चने का सट्टा दड़ा और न जाने क्या-क्या सट्टे। किन्तु लोग भूल गये हैं कि केवल पुरुषार्थ से ही धन नहीं मिलता इसके लिये कुछ और भी चाहिये। पूर्व कृत सुकृत-पुण्य का उदय हुए बिना सारा पुरुषार्थ ऊसर भूमि पर पड़ी हुई वर्षा की तरह निष्फल होता है। पुण्य का जितना पानी हम लाए हैं, उतना खींच कर निकाल कर पी सकते हैं। पानी ही नहीं होगा तो पियेंगे कहाँ से ?

पहले जन लोग बहुत सम्पन्न होते थे। क्योंकि वे धर्म करते थे। अर्चा पूजा दान परोपकार करते थे। न्यायपूर्वक धन कमाते थे। जो पैसा बचता था उसे मंदिर निर्माण आदि में लगाते थे। जनों की प्रामाणिकता की संसार पर सब छाप थी। खजाने व खजांची अधिकतर जन ही बनाये जाते थे। जनों में कोई जैन नहीं मिलता था। लोगों पर उनके चारित्र का प्रभाव था। वे निर्व्यसनी रहते थे। क्या शराब नहीं पीते थे। मांस भक्षण का तो प्रश्न ही नहीं था।

किन्तु आज साधु की संगति नहीं। सोसायटी अच्छी नहीं रही। धर्म में रुचि नहीं। आज तो नौबत यहाँ तक आ पहुँची है कि जन नामधारी शराबी भी मिल जायेंगे सोसायटी में पहुंच कर अण्डा में भी बहुतों को परहेज नहीं अण्डा मैं भी अनेक जैनी मिल जायेंगे। क्या यह हम लोगों के लिए शोचनीय स्थिति नहीं है। त्याग और आकिंचन्य धर्म के मानने वाले यदि ब्लैक मार्केट तस्कर व्यापार या मिलावट के मामले में गिरफ्तार हो तो इससे अधिक दुःख की क्या बात हो सकती है। जनधर्म और जन संस्कृति को संसार में कोई आघात नहीं पहुंचा सकता। यदि आघात लगा है तो स्वयं जनों द्वारा। जैनों का आचरण मान्यतायें आज जनधर्म के अनुकूल नहीं रही। आज के युवक नित्य दर्शन पानी छान कर पीने रात्रि भोजन त्याग आदि धार्मिक आचार विचारों का उपहास उड़ाने में संकोच नहीं करते। कहाँ है जनम जन संस्कृति की उदात्त महान भावना। पहले जन की पहचान उसके आचरण से होती थी और आज नाम के साथ लगे जन शब्द से होता है। कुछ तो अपने नाम के आगे जन शब्द लगाने में भी लज्जा अनुभव करते हैं।

यह एक पहलू है आज की स्थिति और हमारी भावना का। किन्तु इसका उज्ज्वल पहलू भी है। आज भी अनुपात की दृष्टि से मंदिरों के नित्य दर्शन करने वालों में जन अग्रणी हैं दान सबसे अधिक जन ही करते हैं कोई जन भीख मांगता हुआ नहीं मिलता। गुरु भक्ति शायद जनों के मुकाबले दूसरे धर्मों में नहीं है। और भी अनेक बातें हैं जिनसे

कारण हमारा मस्तक आज भी ऊँचा है। अब केवल आवश्यकता है आकिंचन्य की भावना का प्रसार करने की। यदि यह भावना जन जन के मन में जम जाय तो फिर न भोगों की अधिक वाञ्छा होगी और न धन की अत्यधिक तृष्णा रहेगी।

एक राजा ने एक साधु के दर्शन किये। वह बोला—महाराज! आपके पास सुन्दर स्त्रियाँ दर्शन को आती हैं। बाजार में से जाते हैं तो हलवाइयों की दुकानें पड़ती हैं। क्या उनकी ओर आपका मन नहीं चलता? साधु बोले—बाद में जवाब देंगे। कुछ दिन बाद साधु राजा से बोले—राजन्! तुम्हारी आठ दिन की आयु शेष है। तुम्हें जो मौज करना है सो कर लो। राजा यह सुनते ही घबड़ा गया। अब उसे न राजपाट में रुचि रही न खाने पीने में। यहाँ तक कि उसको स्त्रियों से भी अरुचि हो गई। तब आठवें दिन साधु राजा के महलों में पहुँचे। बोले—राजन्! इन दिनों तो खूब मौज की होगी? राजा ने उत्तर दिया—महाराज! आप मौज की कहते हैं। मुझे रात में नींद नहीं आती दिन में खाना नहीं भाता। रात दिन आँखों के सामने मौत खड़ी दिखाई देती है। साधु बोले—तुम्हारे प्रश्न का जवाब मिल गया तुम्हें। तू मौत का निश्चय होने पर भोगों से उदासीन हो गया। इसी प्रकार मुझे भी भोगों में कोई आसक्ति नहीं रही। मुझे भी निश्चय है कि एक दिन मुझे भी अवश्य मरना है। ऐसी दशा में संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं में मोह हटना स्वाभाविक ही है।

हम भी इसी प्रकार अपने मन को वासनाओं से दूर रखें और यह तभी हो सकता है, जब मन में आकिंचन्य भावना की लौ सदा प्रज्वलित रहे।

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

ब्रह्मणि चरणं ब्रह्मचर्य अर्थात् अपनी आत्मा में रमण करना इसी का नाम ब्रह्मचर्य है। यह ब्रह्मचर्य व्यवहार निश्चय रूप से दो प्रकार का है। सम्पूर्ण कर्म की निर्जरा करके जो अपने स्वरूप में लीन होकर

सिद्ध पद प्राप्त कर लेता है उसको ब्रह्म या सिद्ध या परमात्मा ऐसा कहते हैं। व्यवहार में स्त्रियों और पुरुषों का त्याग करके अपने आत्म साधन में लीन रहना अर्थात् मन-वचन काय द्वारा सम्पूर्ण स्त्रियों को माता बहिन के समान मानना इसका नाम व्यवहार ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य में एक ब्रह्म और दूसरा चर शब्द है। व्यवहार ब्रह्मचर्य की दृष्टि से शब्द की बनावट पर ध्यान दिया जाता था। किसी भी शब्द का अर्थ एक विश्लेषण करके न देखें तब तक उसका क्या महत्वपूर्ण अर्थ है वह हमारी समझ में नहीं आता है। ब्रह्मचर्य में दूसरा शब्द चर शब्द है। ब्रह्म और चर इन दो शब्द मिलकर एक ब्रह्मचर्य शब्द बना है।

ब्रह्म का अर्थ है – शुद्ध आत्म सहित या परमात्म भाव यह जीवित भाव रहता है तो ब्रह्म की तरफ चर्या करना अर्थात् गमन करना उन्मुख होना उस ओर अग्रसर होना उसके लिए साधना करना यह ब्रह्मचर्य का अर्थ है। तात्पर्य यह है कि जो जीवन में परमात्मभाव की ज्योति जगाता रहता है वही ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य जीवन में परमात्मभाव की ज्योति प्रज्वलित करना होता है क्योंकि उसकी साधना से दूसरे विकारों का दमन करना भी आवश्यक बन जाता है। और दूसरे विकारों के दमन करने का अर्थ है महान् संघर्ष। देखा जाता है कि मनुष्य बाहर की कम क्रियाएं तो बड़ी सरलता के साथ किया करता है। तिलक-छापे लगा कर अनेक धारण करके पूरा धार्मिक बन जाता है मगर परमात्मभाव की प्राप्ति के निमित्त ब्रह्मचर्य का पालन करना उसके लिए बहुत कठिन पड़ता है। उसके मन के भीतर अनेक द्वन्द्व उठ खड़े होते हैं। ऐसे समय में अनेक विकार जाग उठते हैं। और उन विकारों की छाया में मनुष्य का मन बार बार मनुष्य से कहता है—छोड़ो और। दुनिया में आया है तो दुनिया के सुख का भोग। आत्मा से उदास क्या होता है मूर्ख ! इस तरह से स्वयं को भ्रमण में क्या रखा है ? और मन की ऐसी बात सुनकर साधक बार-बार विचलित होता है और ठोकर खाकर कभी-कभी गिरने का प्रसंग होने की भी बात आती है। कभी कभी ऐसा देखा जाता है कि साधु और आ जाता है। तो इस कठिन डगर ब्रह्मचर्य के मार्ग पर कई निरन्तर

साधक ही ठहर जाता है आगे बढ़ जाता है और मोक्ष को प्राप्त करता है। इस सम्बन्ध में राजा भर्तृहरि ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा है —

मत्तेभकुम्भ-दलने भुवि सन्ति शूरा,
केचित् प्रचण्ड-मृगराजवधेऽपि दक्षा।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य,
कन्दर्प-दर्प-दलने विरला मनुष्या ॥

धर्म शास्त्रों के विधान की भाषा में साधु का ब्रह्मचर्य पूर्ण माना जाता है परन्तु यह पूर्णता बाह्य प्रत्याख्यान की दृष्टि से है। यह पूर्ण ब्रह्मचर्य का लक्ष्य रख कर की जाने वाली एक महान् प्रतिज्ञा मात्र है। साधु स्व स्त्री और पर स्त्री दोनों का ही त्याग करके चलता है। उसकी साधना में गृहस्थ के समान स्वस्त्री की भी छूट नहीं रहती है। बस इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर साधु के ब्रह्मचर्य को पूर्ण बताया गया है, अन्यथा अन्तर्जीवन में टटोलकर देख कि क्या वस्तुतः उसका ब्रह्मचर्य पूर्ण हो गया है? क्या उसके सभी अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो गये हैं? क्या वासना की सभी बूंदें सूख गई है? नहीं। यह सब कुछ नहीं हुआ है। अभी साधु को भी मन के विकारों से एक लम्बी लड़ाई लड़नी है। यह नहीं कि अप्पाणं वोसिरामि पढ़ा और बस उसी दिन ब्रह्मचर्य की पूरी साधना हो गई। उसी दिन अहिंसा सत्य और ब्रह्मचर्य पूरे हो गये और जो साधु की साधना है वह पूरी हो गई तो फिर आगे के लिए जीवन संसार में क्या है? अब उसे करना क्या है? उसे जो कुछ पाना था वह पा चुका है। उसी घड़ी और उसी क्षण पा चुका है। उसके जीवन में पूर्णता आ गई है। अशुद्धि जीवन में रही हो नहीं। फिर अब वह किससे लड़ता है? किसलिए संघर्ष कर रहा है? और साधना के मार्ग पर जो कदम सम्भाल कर रख रहा है सो आखिर किस प्रयोजन से रख रहा है?

साधु की प्रतिज्ञा लेते ही ब्रह्मचर्य सत्य और अहिंसा आदि में पूर्णता आ जाती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि चारित्र में पूर्णता आ

जाती है। चारित्र में पूर्णता आजाने पर आत्मा है मनुष्य का [illegible] होती है? चारित्र की परिपूर्णता मनुष्य के परमात्म [illegible] है और मुक्ति प्रदान करती है। फिर कोई भी साधक साधुत्व के [illegible] करने के साथ साथ ही सिद्ध बुद्ध और मुक्त क्यों नहीं हो जाता?

तो साधुत्व की प्रतिज्ञा प्रतिज्ञा है और वह जीवन भर उस [illegible] के मार्ग पर चलता है और वह निरन्तर चलता है। कभी [illegible] भी आता है [illegible] भी आता है। विकार [illegible] कभी दबाने का प्रयत्न करने पर भी उभर आते हैं और मन को [illegible] में डाल देते हैं।

मन ऐसा घोड़ा है इतना हठी और चपल है, कि [illegible] जाता है उस ओर जिधर से और मोड़ पकड़ता है जिस ओर [illegible] सवार की आज्ञा नहीं मानता है। सवार दुर्बल और घोड़ा बलवान है। वह सवार का कहना नहीं मानता। गीता में कहा है कि—

चंचलं हि मनः कृष्ण, प्रमाथि बलवद् दृढम्।

तो पूर्ण साधना के क्षेत्र में उपस्थित होकर साधक मन के घोड़े पर नियंत्रण करता है किन्तु वह घोड़ा रहता है। और जब वह मन का बागडोर सवार के हाथ में आ जाता है [illegible] प्रभावित जिधर का मार न आता है। एक संत कहते हैं—

मन सब पर असवार है, मन के मत अनेक।
जो मन पर असवार है, वह लाखन में एक॥

मन सब पर सवार है। कहने को तो कहते हैं कि [illegible] घोड़ा हुआ है किन्तु मन का घोड़ा ऐसा घोड़ा है कि वह [illegible] सवार रहता है और सवार को जिधर का जिधर ले जाता है। [illegible] पर ही अपना नियंत्रण या कन्ट्रोल कर रखा है और [illegible] सवार उड़ा जा रहा है।

तो कभी कभी ऐसा होता है—जब बहुत [illegible] हुआ है और हजारों आत्माएं इकट्ठा होते हैं और समारोह [illegible] मालाएं डालकर उस कुर्सी पर बिठा देते हैं तब [illegible] तो मालूम होता कि उस पर अहंकार आ गया है। अब मन

दृश्य दर्शक को मिलता है तो प्रत्यक्ष में तो यह मालूम होता है कि यह कुर्सी पर बैठा है किन्तु वास्तव में कुर्सी इस पर बैठ गई है। जीवन की यह कितनी विचित्र बात है।

एक गुरु था और एक चेला। प्रातः काल में दोनों चले जा रहे थे नदी पार स्नान करने। नदी किनारे पहुँचे तो कुछ साफ नजर नहीं आता था। जब वह शिष्य और गुरु नदी में स्नान करने लगे तो अचानक गुरु की दृष्टि एक काली चीज पर पड़ी। वह बहती हुई जा रही थी। तो उसने शिष्य से कहा—देख यह कम्बल बहा जा रहा है किसी का बह गया है। तू उसे पकड़ ला।

शिष्य ने कहा—महाराज मुझसे तो वह नहीं पकड़ा जायेगा। गुरु ने फटकारा—तू इतना हट्टा कट्टा है और कम्बल भी नहीं पकड़ा जाता। पकड़ने मैं जाता हूँ। गुरु ने छलांग लगाई और उसे पकड़ा तो कम्बल नहीं रीछ था। गुरु ने ज्योंही उसे पकड़ा कि उसने गुरु को पकड़ लिया। अब गुरु अपना पिंड छुड़ाने की कोशिश कर रहे हैं और जल में अन्दर गुत्थमगुत्था हो रही है। चेले को कुछ स्पष्ट दीख नहीं रहा था। देर हो गई तो उसने आवाज दी—गुरु जी कम्बल छोड़ दो रहने भी दो कम्बल और कहीं मांग लेंगे। तब गुरु ने कहा—गुरु तो कम्बल छोड़ना चाहता है किन्तु कम्बल ही उसे नहीं छोड़ रहा है।

सो जो बात गुरु और शिष्य की है वही बात सारे संसार की है। हमने किसी चीज को चाहा और उसे पकड़ने गये और पकड़ लिया। बहुत बार ऐसा होता है कि वही चीज हम पकड़ते हैं और ऐसा पकड़ लेती है कि सारी जिन्दगी बीत जाती है फिर भी पिण्ड नहीं छोड़ती।

संसार की यही दशा है। इस दशा से मुक्ति पाने के लिए ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय और ब्रह्मचर्य की चर्चा बतलाई गई है। मनुष्य एक ही झटके में इस दशा से अपने आपको छुड़ा सकता है किन्तु मन की गति बड़ी विचित्र है वह मन पर सवार है।

बात यह है कि मन आत्मा की जो शक्ति है आत्मा ने जो उसे जन्म दिया है। अब जन्म देने वाले में यह क्षमता भी होनी चाहिए कि वह उसे अपने वश में रख सके। किन्तु यह ऐसा भूत है कि जिसे जगा तो दिया है, किन्तु उसे वश में रखने की यदि क्षमता नहीं तो वह जैसा चाहेगा वैसा होगा। उसके नचाये नाचना पड़ेगा।

आज आत्मा को विषयलम्पट बनाने वाले पंचेन्द्रिय विषय ही हैं। ये पंचेन्द्रिय विषय भूत पिशाच के समान हैं। यह इस आत्मा के अन्दर प्रवेश कर अनेक गतियों में नचाता है। इसलिए इनसे पिंड छुड़ाने के लिए पुण्यात्मा नेमिनाथ तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ भगवान महावीर ने जन्म से ही उस पिशाच को परास्त कर अपने अखण्ड अविनाशी ब्रह्मपद को पाया। अर्थात् परमात्म पद की प्राप्ति की। इसलिए जो जीव अपना हित करना चाहता है उसको हमेशा इस ब्रह्मचर्य व्रत को मन वचन काय से पालन करना चाहिए। वह इस लोक में और परलोक में कल्याण होकर अन्त में सम्पूर्ण कर्म क्षय करने का फल प्राप्त करता है। ब्रह्मचर्य की महिमा अपार है। जिसके पास ब्रह्मचर्य है उसको रोग नहीं होता शरीर की कान्ति बनी रहती है विद्या सहज प्राप्त हो जाती है स्मरण शक्ति बढ़ती जाती है। इस तरह ब्रह्मचर्य में अनेक गुण हैं।

ब्रह्मचर्य में अनेक महापुरुष प्रसिद्ध हो गये हैं — अकलंक निकलंक, देशभूषण कुलभूषण आदि। सीता अनन्तमती द्रोपदी प्रभावना आदि अनेक स्त्रियां जग में प्रसिद्ध हो गई हैं। इसलिए जो प्राणी अपना कल्याण करना चाहता है उसको नियम से अवश्य पालन करना चाहिए। और उस शील को बिगाड़ने वाली कुसंगति का त्याग कर देना चाहिए। कहा भी है कि—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा, न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

बुद्धिमान आत्मा को अपनी माता बहिन पुत्री इत्यादि के साथ भी एकान्त स्थानवर्ती नहीं होना चाहिए क्योंकि इन्द्रियां बड़ी बलवान हैं

जो कि विद्वान पुरुष को भी भ्रष्ट कर देती है। इसी प्रकार स्त्री अग्नि को भी पर-पुरुष मान से अपनी रक्षा करनी चाहिए। पर पुरुष सर्वत्याज्य है। अपना रिश्तेदार भाई बंधु कुटुम्बीजन भी अगर खोटा हो तो विश्वास का पात्र नहीं है। खोटी स्त्रियों का सम्पर्क भी शीलवती स्त्री को दूर से ही त्याग देना चाहिए। नीतिकार ने कहा है कि —

पानं दुर्जन-संसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वपनश्चान्य-गृहे वासो नारीणां दूषणानि षट् ॥

मद्यपान दुर्जन संसर्ग पति की जुदाई नगर में यत्र तत्र घूमना अन्य के घरों में सोना तथा अन्य घरों में रहना ये स्त्रियों के छह दूषण हैं। इसलिए इन छहों दोषों को छोड़ देना चाहिए। अर्थात् नशील पदार्थों का सेवन कभी नहीं करना चाहिए, दुर्जन का कभी संसर्ग नहीं करना चाहिए, पति की सेवा सेवा में रहना चाहिए नगर में गुण्डे लोग अधिक घूमते हैं इसलिए उनसे अपने को बचाने के लिए स्वच्छन्द अकेली यत्र तत्र नहीं जाना आना चाहिए तथा पर पुरुषों के घर में सोना नहीं चाहिए तथा पर पुरुषों के घर में निवास अर्थात् उठना बैठना रहना नहीं चाहिए। जो शील को पालते हैं उनके लिए श्री सोमप्रभ आचार्य कहते हैं कि —

हरति कुलकलंकं लुम्पते पापपंकं,
सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति ।
नमयति सुरवर्गं हन्ति सर्वोपसर्गं,
रचयति शुचिशीलं स्वर्गं मोक्षौ सलीलम् ॥

जो प्राणी अपनी आत्मा में पवित्र शील धर्म को धारण करता है वह अपने कुल के लगे हुए कलंक का नाश करता है, पाप रूपी कीचड़ को धोता है पुण्य का संचय करता है जगत में सर्वत्र महिमा को विस्तारता है देव गण उसको प्रणाम करता है सम्पूर्ण उपसर्गों का विनाश कर देता है और पवित्र स्वर्ग और मोक्ष को लीलामात्र में ही प्राप्त कर लेता है। यह सब शील का माहात्म्य है।

आचार्यरत्न १०८ श्री देशभूषण जी महाराज द्वारा लिखित और संपादित महत्वपूर्ण ग्रन्थ

१ भूवलय अध्याय १ से १४ तक
२ भावनासार
३ शास्त्र सार समुच्चय
४ निर्वाण लक्ष्मीपति स्तुति
५ चौदह गुणस्थान चर्चा
६ दान ध्यान
७ भगवान महावीर
८ धर्मामृतसार (हिन्दी-मराठी में)
९ ध्यान सूत्राणि
१० भूवलय व कुछ कन्नडीय इतिहास ग्रन्थ
११ अपराजितेश्वर शतक—प्रथम भाग
१२ ,, द्वितीय भाग
१३ त्रेसठ शलाका पुरुष
१४ उपदेश सार संग्रह—भाग १
१५ ,, भाग २
१६ ,, भाग ३
१७ ,, भाग ४
१८ ,, भाग ५
१९ ,, भाग ६
२० निरंजन स्तुति
२१ गुरु-शिष्य प्रश्नोत्तरी
२२ रयणसार